ॐ

यजुर्वेदका स्वाध्याय।

अध्याय ३६

"सच्ची शांतिका सच्चा उपाय"

लेखक

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्याय मंडल,

औंध जि. सातारा (पूना मार्ग)

सन १९१८.

ॐ

यजुर्वेद अध्याय ३६ के स्वाध्याय की प्रस्तावना

स्वाध्यायग्रंथमाला ।

यजुर्वेदका स्वाध्याय प्रसिद्ध करनेकी इच्छा बहुत दिनोंसे मेरे मनमें थी, परंतु कई कारणोंके उपस्थित होनेसे इस समयतक वह इच्छा पूर्ण न हो सकी । अब एक एक अध्याय अलग अलग प्रसिद्ध करनेका निश्चय किया है, और इस निश्चयके अनुकूल यह दूसरा पुस्तक प्रसिद्ध किया जाता है । पहिला पुस्तक "**ईशोपनिषद् का स्वाध्याय**" नामसे यजुर्वेद के अध्याय ४० पर गतवर्ष प्रसिद्ध हो चुका; अब इस समय यह ३६ वे अध्यायका स्वाध्याय "**सच्ची शांतिका सच्चा उपाय**" नामसे प्रसिद्ध किया जाता है ।

अध्यायका नाम ।

इस अध्यायका नाम "**शांति-करण**" है । शांतिका सच्चा साधन इस अध्यायमें वर्णन किया है । सच्ची शांति किसको कहते हैं, और सच्ची शांतिका सच्चा उपाय क्या है, इसका उत्तम वर्णन पाठक इस अध्यायमें देख सकते हैं । आगे चालीसवे अध्यायमें "ईशावास्य" आदि मंत्रोपनिषद् द्वारा ब्रह्म-ज्ञानका उपदेश करना है । उस उपदेशके लिये शिष्यकी तैयारी करनेके हेतूसे इस ३६ वे अध्यायका प्रारंभ होगया है । अधिकारी शिष्यको ज्ञान देनेसेहि विशेष लाभ होता है । अनधिकारीको देनेसे हानी होती है । इस कारण ४० वे अध्यायका आत्मज्ञानका उपदेश ग्रहण करनेका अधिकार शिष्यमें उत्पन्न करने के लिये इस शांति-करण अध्यायका उपक्रम है । शांतिका करण अर्थात् शांतिका साधन इस अध्यायमें वर्णन किया है । सामाजिक और

व्यक्तिविषयक सच्ची शांति प्रस्थापित करनेकी वैदिक पद्धति इस अध्यायमें हम देख सकते हैं।

ऋषि देवता और छंद।

वेदोंका अध्ययन करनेके पूर्व मंत्रोंके ऋषि, देवता और छंदोंका परिज्ञान अवश्य होना चाहिए। परंपराका सांप्रदाय यहां तक दृढ है कि, वैदिक परंपराके अभिमानी समझते हैं, कि छंद-ऋषि-देवता का उच्चार किये विना मंत्रोंका किया हुआ जप फलीभूत नहीं होता। इस लिये सनातनधर्मी लोक छंद-ऋषि देवता पूर्वक मंत्रोंका पाठ करते हैं।

इस पद्धतिमें कोई विशेष हेतु है वा नहीं, इसका ठीक ठीक ज्ञान मुझे अबतक नहीं हुआ। यदि कोई स्वाध्यायशील विद्वान् इसके हेतुकी खोज करके प्रसिद्ध करेंगे तो बहुत अच्छा होगा।

इस अध्यायके २४ मंत्र हैं। कात्यायन मुनिकृत माध्यंदिन वाजसनेय संहिताका सर्वानुक्रम देखनेसे इस अध्यायका दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि प्रतीत होता है:—

ऋचं वाचं पञ्चाध्यायीं दध्यङ्ङाथर्वणो ददर्शाग्नि-
काश्वमेधिक-वर्जमाद्यो अध्यायः शान्त्यर्थो वैश्वदेवः॥
-सर्वानुक्रमसूत्रं अ. ४।५।, अ. ३६॥

"'ऋचं वाचं आदि' अध्याय ३६ से अंतके यजुर्वेदके पांचों अध्याय का दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि है। इन ३६ से ४० तक पांच अध्यायोंमें 'उग्रश्च भीमश्च' आदि अ. ३९।७-१३ तक मंत्रोंका प्रजापति परमेष्ठि ऋषि है। शेष सब अध्याय दध्यङ्ङाथर्वण ऋषीके देखे हैं। यह ३६ वा अध्याय शांति के लिये है और इसके अनेक देवताएं हैं।" इस प्रकार सर्वानुक्रम में लिखा है। इस अध्यायमें आये हुए अनेक मंत्र ऋग्वेदमें दिखाई देते हैं, उनके ऋषिदेवता देख कर निम्न कोष्टक तयार किया है:—

यजुर्वेद

अध्याय ३६ के मंत्रोंके ऋषि और देवताओंकी सूची

मंत्र	यजुर्वेदमें ऋषि और देवता		ऋग्वेदमें ऋषि और देवता	
१ ऋचं वाचं प्रपद्ये०	दध्यङ् आथर्वणः	अग्निः	—०×०—	—०×०—
२ यन्मे च्छिद्रं चक्षुषो०	,,	बृहस्पतिः	—०×०—	—०×०—
३ तत्सवितुर्वरेण्यम्०	विश्वामित्रः	सविता	विश्वामित्रः	सविता
४ कया नश्चित्र आभुव०	वामदेवः	इन्द्रः	वामदेवः	इन्द्रः
५ कस्त्वा सत्यो मदा०	,,	,,	,,	,,
६ अभीषुणः सखीनां०	,,	,,	,,	,,
७ कया त्वं न ऊत्या०	दध्यङ् आथर्वणः	,,	सुकक्षः	,,
८ इन्द्रो विश्वस्य राजति०	,,	,,	—०×०—	—०×०—
९ शंनो मित्रः शंवरुणः०	,,	मित्रादयः	गोतमो राहूगणपुत्रः	विश्वेदेवाः
१० शंनो वातः पवतां०	,,	वातादयः	—०×०—	—०×०—
११ अहानि शं भवन्तु०	,,	अहरादयः	—०×०—	—०×०—
शं न इन्द्राग्नी भवतां०	,,	इन्द्राग्न्यादयः	वसिष्ठः	विश्वेदेवाः

मंत्र	यजुर्वेदमें ऋषि और देवता		ऋग्वेदमें ऋषि और देवता	
१२ शं नो देवी रभिष्टय०	,,	आपः	त्रिशिरा-स्त्वाष्ट्रः सिंधुद्वी-पो वा आं-बरीषः	आपः
१३ स्योना पृथिवी नो भ०	मेधातिथिः काण्वः	पृथिवी	मेधातिथिः काण्वः	पृथिवी
१४ आपो हिष्ठा मयोभु०	त्रिशिरास्त्वा-ष्ट्रः सिंधुद्वीपो वा आंबरीष.	आपः	त्रिशिरास्त्वा-ष्ट्रः सिंधुद्वीपो वा आंबरीष.	आपः
१५ यो वः शिवतमो र०	,,	,,	,,	,,
१६ तस्मा अरं गमाम०	,,	,,	,,	,,
१७ द्यौः शांतिरन्तरिक्षं०	दध्यङ् आथर्वणः	ईश्वरः	—०×०—	—०×०—
१८ दृते दृꣳह मा मित्रस्य०	,,	,,	—०×०—	—०×०—
१९ दृते दृंह मा ज्योक्ते०	,,	,,	—०×०—	—०×०—
२० नमस्ते हरसे शोचिषे०	लोपामुद्रा	अग्निः	—०×०—	—०×०—
२१ नमस्ते अस्तु विद्युते०	दध्यङ् आथर्वणः	ईश्वरः	—०×०—	—०×०—
२२ यतो यतः समीहसे०	,,	,,	—०×०—	—०×०—
२३ सुमित्रिया न आप०	,,	सोमः	—०×०—	—०×०—
२४ तच्चक्षुर्देव हितं पुर०	,,	सूर्यः	वसिष्ठः	सूर्यः

जो मंत्र ऋग्वेदमें नहीं आया उसके स्थान पर ०×० ऐसा चिन्ह दिया है, और जिसका ऋषि और देवता पूर्व मंत्रके अनुसार है उस स्थानपर ” ऐसा चिन्ह रखा है।

इस कोष्टक को देखनेसे पता लगता है कि, इस अध्याय के २४ मंत्रों में से १२ मंत्र ऋग्वेदमें हैं, किसीकिसी मंत्रमें कुच्छ थोडासा भेद भी है। तथा ऋषिनामोंका बडा भेद है। देवताओंका विशेषतया कोई भेद नहीं। "विश्वे-देवाः" देवताका तात्पर्य इतनाही होता है, कि विश्वेदेवा के मंत्रोंमें अनेक देवताएं हुआ करतीं हैं। (विश्वे) अनेक (देवाः) देवतावाले मंत्रोंकी विश्वेदेवा देवता होती है। इस प्रकार अ. ३६ के मं. ९–११ की विश्वेदेवा देवता है, अर्थात् इन मंत्रोंमें अनेक देवताओंके नाम आये हैं। ऋग्वेदमें जिसको 'विश्वे-देवाः' कहा, वहां यजुर्वेदमें 'अग्न्यादयः, मित्रादयः अथवा लिंगोक्ताः' कहा तो कोई भिन्न देवता नहीं हुई। "लिंगोक्ताः" का अर्थहि यह है कि, मंत्रमें जो देवताओंके चिन्ह होंगे उन (लिंग) चिन्हों द्वारा प्रकट होनेवाले (उक्त) सब देवताएं वहां ली जातीं हैं। अस्तु। इस प्रकार ऋग्यजुमें देवताभेद नहीं। परंतु उक्त कोष्टकमें ऋषिभेद अवश्य है।

ऋषिनामोंका भेद।

इस ऋषिभेदकी सब जिम्मेवारी अजमेरके वैदिक प्रेसके संचालकों पर है। संशोधन किये विना मनमानीं बातें छापकर प्रसिद्ध करनेका साहस इन पुस्तकोंमें बहुत है। अजमेरके छपे हुए ऋग्वेद और यजुर्वेद देखनेसे पता लगेगा कि, विना कारण और विना आधार ऋषियोंके नाम उलट पुलट किये हैं, और कई स्थानोंपर देवताओंका भी वैसा ही हाल किया है। मैंनें इसका थोडासा वर्णन "ईशोपनिषद्के स्वाध्याय" नामक पुस्तकमें किया है, और वही बात ऊपर दिये हुए कोष्टकसे प्रतीत होती है। इसलिये ऋषिनामोंका निश्चय विद्वानोंको करना चाहिए। और जहांतक हो सके वहांतक प्राचीन परंपराको तोडना नहीं चाहिए। मेरे विचारमें ऋग्वेदके दिए हुए ऋषियोंके नाम अधिक विश्वासके लिये योग्य हैं। शतपथमें कहा है:—

> दध्यङ्ङु ह वाऽआथर्वण एतं शुक्रं
> एतं यज्ञं वेद ॥
>
> -शतपथ. १४।१।१।२०

"आथर्वण दधीची ऋषीनें इस शुक्र-(अध्याय ३६)-को और इस यज्ञको

जाना।" इस शतपथके वचन से यह संपूर्ण अध्याय अथवा ३६ से ४० तक के पांच अध्याय आथर्वण दधीचीके देखे हुए माने जाते हैं । परंतु इसका तात्पर्य यह नहीं की, इन पांच अध्यायके संपूर्ण मंत्रोंका द्रष्टा दधीची है, उक्त शतपथके वचन में "शुक्र और यज्ञ' ये दो शब्द हैं; दोनोंसे यह तात्पर्य नहीं निकलता कि दधीची ऋषीके देखे हुए उक्त पांच अध्याय हैं । इस पंचाध्यायीमें "तत्सवितुर्वरेण्यं०" मंत्र विश्वामित्रका देखा हुआ प्रसिद्ध है। इस प्रकार अन्य मंत्र अन्य ऋषियोंके देखे हुए हैं । उक्त शतपथ वचनका और उक्त सर्वानुक्रमणी सूत्रका तात्पर्य इतनाही है कि, इन अध्यायोंमें दधीची ऋषीके देखे हुए मंत्र, अन्य ऋषिवाले मंत्रोंकी अपेक्षा, संख्यामें बहुत हैं । जिस अध्यायमें जिस ऋषीके देखे हुए मंत्रोंकी संख्या अधिक होती है, उस अध्यायका मुख्यतया वह ऋषी माना जाता है, यह बात कभी भूलनी नहीं चाहिए ।

ऋषियोंके द्रष्टृत्वका क्या तात्पर्य है और उसका अर्थके साथ कोई विशेष संबंध है वा नही, इसका ठीक ठीक विचार वेदोंका स्वाध्याय पूर्ण होनेपर होनेवाला है । संपूर्ण वेदोंका अध्ययन होनेसे पूर्व उक्त प्रश्नोंका उत्तर देना साहस का कार्य है । वेदोंको '**ईश्वरका काव्य**' मानकर पढना चाहिए । क्योंकि कहा है:—

पश्य देवस्य काव्यं
न ममार न जीर्यति ॥

अथर्व. १०।८।३२॥

"ईश्वरका यह काव्य देखो। जो देखता है, वह मरता नहीं और नहीं जीर्ण-कृश-होता है ।" देवके काव्यका यह प्रताप है । इसका अनुभव जिस महापुरुषको प्राप्त होगा, वही सब प्रश्नोंका यथायोग्य उत्तर दे सकता है ।

सबसे पहिले वेदको काव्य समझना चाहिए । काव्यमें (१) स्वर साधन, नादका लय, (२) विचारोंका स्फुरण, (३) शब्द समूहमें गुह्य अर्थ रखनेकी कुशलता, (४) सुविचारोंकी उत्तम योजना, (५) आत्मिक सत्यका अनुभव, (६) सचाईको दिव्य दृष्टीसे देखना, (७) परम उच्च प्रतिभाका स्फुरण,

(८) विशाल और अटल सृष्टिनियमोंका समीकरण, (९) अनेक अटल नियमोंको स्वल्प शब्दोंमें ग्रथित करनेका चातुर्य, (१०) कल्पनाशक्तिकी चेतनता, धार्मिक समताभाव और आत्मिक शांति; इतने गुण अवश्य रहते हैं । उत्तम काव्य वह होता है कि, जिसका विचार करते करते उसमें सुविचार सागर की गहराई बडी गहन प्रतीत होने लगती है और प्रतिसमय नवीन सुविचार अंतःकरणमें प्रेरित होते हैं । काव्यका संबंध बाह्य कानोंकी अपेक्षा आंतरिक हृदय और आत्माके साथ अधिक रहता है ।

वेद ईश्वरका काव्य होनेसे इसमें विशेष प्रकारकी दिव्यता है, और खोज करते करते उसकी गहराई अधिक गहन होती जाती है । पढते पढते प्रतिसमय नवीन विचारोंकी प्रेरणा होती है; इस लिये इस देवके काव्यके विषयमें बहुत पढनेके पश्चात् हि विचार प्रकट करने अच्छे हैं । तब तक स्वाध्यायके साधन एकत्रित करनेका कार्य करनाही मेरे जैसे साधारण पुरुषोंको उचित है । इस लिये स्वाध्यायके साधन एकत्रित करनेका प्रयत्न कर रहा हूं।

स्वाध्यायकेलिये मंत्रोंके पदोंका अर्थ जानकर समान विचारके अन्य मंत्र साथ साथ सोचने चाहिए । इस लिये इस ग्रंथमें प्रथम मंत्रोंका शब्दार्थ देकर पीच्छेसे स्पष्टीकरणके समय तुलना के लिये अन्य मंत्र और शब्दोंका विशेष भाव दिया है । ऐसा स्वाध्याय करनेसे वैदिक विचारोंकी एकता मनमें दृढ होगी । वेदमंत्रोंकी एकवाक्यता करनेमें इस प्रकारके अभ्यासकी आवश्यकता होती है । इस प्रकार विचार करनेसे पता लगेगा कि, वेदमें परस्पर विरोधी विचार नहीं हैं । अब इस पुस्तकके विषयमें थोडासा लिखना चाहिए। इस पुस्तकमें (१) प्रथम सब मंत्रोंका शब्दार्थ और भावार्थ दिया है । (२) दूसरे विभागमें मंत्रोंपर विशेष विचार प्रकट करनेके समय समान अन्य मंत्रों और ब्राह्मण वाक्योंका विचार किया है । (३) पश्चात् इस पुस्तकमें आये हुए मंत्रोंके उत्तम कण्ठ करने योग्य सुभाषित दिये हैं। (४) पश्चात् इस पुस्तकमें आये हुए मंत्रों और ब्राह्मणवाक्योंकी सूची दी है । (५) पश्चात् इस अध्याय ३६ के मंत्र अन्य वेदों और ब्राह्मण आदि ग्रंथोंमें जहां जहां आते हैं, उन स्थानोंके पते दिये हैं । इस प्रकार स्वाध्याय करनेके सब साधन यहां एकत्रित किये हैं, और इसीप्रकार अन्य अध्यायोंके स्वाध्यायकी योजना

करनी है। इसमें किसीको न्यूनाधिक करनेकी सूचना करनी हो तो कर सकते हैं।

इस अध्यायमें शांति प्रस्थापित करनेके सत्य उपायोंका वर्णन है। कई लोक शांति स्थापन करनेकेलिये युद्ध करते हैं, कई आपस में समझौता करनेकेलिये सिद्ध होते हैं, इस प्रकार शांतिके अनंत उपाय अनेक लोक सन्मुख करते हैं। ऐसे समय यदि इस अध्यायके उपदेशोंका विचार किया जाय तो बडा अच्छा होगा, इसमें कोई संदेह नहीं।

अध्यायका आशय।

इस अध्यायके पहिले मंत्रमें "वाणीको सद्वाक्यमें, मनको सत्कर्ममें, प्राणको सदुपासनामें और श्रोत्रको आत्मज्ञानके श्रवणमें लगाकर वाणीका तेज, संघका बल, जीवनकी शक्ति और आत्माका सहारा (अधिकरण) प्राप्त करो" ऐसा उपदेश है। वाणी और मनमें बुराई रहनेसे अशांति होती है, इसलिये इनकी शुद्धिका उपदेश प्रारंभमेंहि किया है। दुर्व्यसनोंमें जीवन शक्तिका दुरुपयोग न हो, इस लिये प्राणोंको उपासनामें लगानेका उपदेश है। चुगली सुननेसे कान बिघडते हैं, इसलिये कानोंको आत्मज्ञान सुननेमें लगाना चाहिए। इस प्रकार सब इंद्रियोंको शुद्ध करके, उनका तेज बढाकर, व्यक्तिभावको बढानेकी अपेक्षा संघभावको बढाना, आदि पहिले मंत्रका उपदेश शांतिस्थापन करनेवालोंको मनन करने योग्य है।

"अपनी इंद्रियोंकी न्यूनता दूर करनेका उपदेश" द्वितीय मंत्रमें है। बाह्य और आंतरिक इंद्रियोंकी न्यूनता, दोष और कमजोरियोंके कारण हि अशांति होती है। इसलिये कमजोरियोंको हटानेका उपदेश विशेष विचार करने योग्य है। तीसरे मंत्रमें भगवान् की उपासना कही है। उपासनाके विना सच्ची शांतिकी स्थापना और अशांतिके कारणोंका नाश होना असंभव है। यह उपासना गायत्रीमंत्र–गुरुमंत्र–के द्वारा कही है। इस प्रकार यहां आया हुआ गायत्रीमंत्र प्रसंगानुरूप योग्य है। जो वेदमें पुनरुक्ति दोषकी कल्पना करते हैं, उनको ऐसे प्रसंगोंका विचार करना चाहिए। मेरे ख्यालमें यहां आया हुआ यह मंत्र अत्यंत योग्य है। इसीप्रकार अन्य स्थानों मे

भी होगा । (यजु. अ. ३२ की प्रस्तावनामें **'वैदिक पुनरुक्तिका महत्व'** देखो)

मंत्र ४ से ७ तक उपासनाके लिये मंत्र दिये हैं । उनमें कई ईश्वरीय गुणों का जो विश्वमें दिखाई देते हैं, वर्णन बडी उत्तमताके साथ किया है । इन मंत्रोंसे सामगानके साथ उपासना होती है । भक्तिका गानके साथ कितना संबंध है, इसका यहां विचार हो सकता है ।

ईश्वरके एकत्वका निश्चय अष्टम मंत्रमें किया है । जिससे अनेक उपास्योंके कारण उत्पन्न होनेवाले अशांतिके प्रकार सुगमतासे दूर हो सकते हैं । एक ईश्वरहि हम सबका नियंता है, और वह ही हम सबका उपास्य है, इस विषयका निश्चित ज्ञान सबके अंतःकरणों में स्थिर होना चाहिए ।

मंत्र ९ से ११ तक परमेश्वर से शांतिकी प्रार्थना है, और साथ साथ परमेश्वरके भिन्न भिन्न नाम कह कर, उन गुणोंकी ओर ध्यान देनेका उपदेश किया है कि, जिनसे मनुष्योंको अभ्युदय के साथ शांति प्राप्त हो सकती है । मंत्र १२ और १४ से १६ तक जलसे व्याधि आदि आपत्तियोंका शमन कहा है । शांतिकेलिये आरोग्यकी अत्यंत आवश्यकता है । इस विषयमें अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं । मंत्र १२ में अच्छे प्रदेश में रहनेका उपदेश है । भूमि रोगरहित और सुखदायक होनी चाहिए । भूमीके कारण जगतमे अनेक प्रकारकी अशांति होती है । इसलिये भूमीके संबंधमें व्यवहार ठीक रखना चाहिए । मंत्र १७ में आकाश से लेकर भूमीतक सब पदार्थोंसे शांति प्राप्त करनेकी सूचना है । किसी पदार्थ से अशांति न हो, इतनाही नही; परंतु **'शांतिभी सच्ची शांति देनेवाली हो,'** ऐसा जो अंतमें कहा है, बहुत मनन करने योग्य है । कई समय शांतिका परिणाम शक्ति क्षीण होनेमें होता है, इसलिये शांति अभ्युदय करनेवाली **सच्ची शांति** चाहिए ।

मंत्र १८ में "सबको मित्रकी दृष्टिसे देखने" का उपदेश है । यह मित्र-दृष्टि न होनेसेहि सब अशांतियां फैलीं हैं । जबतक इस मित्र-दृष्टिका स्वभाव सब के अंतःकरणों में स्थापित न होगा तबतक सच्ची शांति स्थापित हो नहीं सकती । मंत्र १९ में "परमेश्वर की जागृति सदासर्वदा मनमें रखने" का उपदेश है । परमेश्वरकी जागृति मनमें रहनेसे मनमें अशुद्ध विचार नहीं

उत्पन्न होते अंतःकरणशुद्धिके लिये ईश्वरकी जागृतिकी अत्यंत आवश्यकता है। मंत्र २०।२१ में परमात्माको नमन कहा है। परमेश्वरके सन्मुख नम्र होनेवालों में शांति रह सकती है।

मंत्र २२ में "अभय प्राप्तिकी इच्छा" है। निडर हो कर धर्मके कार्य करने चाहिए। धर्मके मार्गमें कार्य करनेके समय भीति दूर करना चाहिए। शांतिस्थापनाके लिये निर्भयताकी अत्यंत आवश्यकता है। मंत्र २३ मे समाजका घात करनेवालेका तथा समाजमें द्वेष फैलानेवालेका नाश करनेकी सूचना है। द्वेषको बढानेवाला एक आदमी सब समाजका नाश कर सकता है, इसलिये उसका नाश करके सब समाजको बचाना अच्छा है। उस द्वेषीके दूर होनेसे समाजमें शांति रहेगी। यह उपदेश समाजशुद्धिकेलिये है। मंत्र २४ में अपनी शक्तियोंको दीर्घ आयुष्यतक बलवान् रखनेका उपदेश है। ऐसा प्रयत्न होना चाहिए कि मनुष्योंकी शक्तियां बढें और साथ साथ आरोग्य, आयु और बल भी बढे।

इस प्रकार २४ मंत्रोंके द्वारा शांतिके उपायोंका वर्णन किया है। इन २४ मंत्रोंका अतिसंक्षेपसे सारांश यह है:—सत्कर्म, आत्मशुद्धि, ईशोपासना, स्वसंरक्षण, आत्मिकबल, एक ईश्वरपर विश्वास, न्याय, ज्ञान, कर्म और मित्रत्व, आरोग्य, उत्तम स्थानमें रहना, तृप्ति और शांति, मित्रवत् सबको देखना, ईश्वरको सर्वदा सन्मुख मानना, ईश्वरको नमन करना, निर्भय होकर धर्माचरण करना, समाजसे दुष्टोंको दूर करना, दिव्य ज्ञानकी ओर दृष्टि रखनी, अपनी आयु बढानी और मरनेतक उत्तम कर्म करने इत्यादि बातोंकी ओर ध्यान देकर, इनका अनुष्ठान करनेसे सच्ची शांति स्थापन हो सकती है।

इस प्रकार इस अध्यायका स्वरूप और महत्व है। आशा है कि स्वाध्यायशील विद्वान् इससे लाभ उठाकर अपना और दूसरोंका भला करेंगें।

स्वाध्यायमंडल
औंध
जि. सातारा
१२।८।१८

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.

विषयसूची ।

॥ ओ ३ म् ॥

यजुर्वेदका स्वाध्याय ॥

शब्दार्थ और भावार्थ ।

शांतिकरणोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

(१) वाणी, मन, प्राण और ज्ञानकीं शक्तियां ।

(ऋषिः—दध्यङ् आथर्वणः । देवता—अग्निः ।)

ऋचं वाचं प्र पद्ये, मनो यजुः प्र पद्ये,
साम प्राणं प्र पद्ये, चक्षुः श्रोत्रं प्र पद्ये ॥
वागोजः सहौजो मयि प्राणाऽपानौ ॥ १ ॥

अर्थ—(१) (वाचं) वाणीद्वारा (ऋचं) ऋग्वेदकी (प्रपद्ये) शरण लेता हूं । (२) (मनः) मनद्वारा (यजुः) यजुर्वेदकी (प्रपद्ये) शरण लेता हूं । (३) (प्राणं) प्राणद्वारा (साम) सामवेदकी (प्रपद्ये) शरण लेता हूं । (४) (श्रोत्रं) श्रोत्र इंद्रियद्वारा (चक्षुः) अथर्ववेदकी शरण लेता हूं । (५) (मयि) मेरे अंदर (वाक्, ओजः) वाणी और बल (सह, ओजः) ऐक्य और बल तथा (प्राण-अपानौ) प्राणशक्तिका बल स्थिर होवे ॥

भावार्थ—मैं अपनी वाक्शक्ति, मननशक्ति, प्राणशक्ति और श्रवणशक्ति को क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में पूर्णतया लगाता हूं । जिससे मेरे अंदर वाणीका बल, ऐक्यका सामर्थ्य और प्राणका प्रभाव स्थिर होकर बढे ।

(२) आत्मपरीक्षण और आत्मसुधार ।

(ऋषिः—दध्यङ् आथर्वणः । देवता—बृहस्पतिः)

यन्मे छिद्रं चक्षुषो, हृदयस्य, मनसो
वाऽतितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु ॥
शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥ २ ॥

अर्थ—(१) (यत्) जो (मे*) मेरे (चक्षुषः) आंख का (हृदयस्य) हृदय का (वा मनसः) और मनका (अति-तृण्णं) अत्यंत फटा हुआ (छिद्रं) छेद है, (तत्) उस (मे) मेरे दोषको (बृहस्पतिः) ज्ञानका अधिपति (दधातु) ठीक करे । (२) (यः) जो (भुवनस्य पतिः) सृष्टिका स्वामी है, वह (नः*) हम सबका (शं) कल्याणकर्ता (भवतु) होवे ।

भावार्थ—(१) हमारे चक्षु आदि बाह्य इंद्रियों में, हृदय में और मन में जो न्यूनता अथवा हीनता छिपी हुई हो, वह परमेश्वर की दयासे दूर होवे । (२) तथा जगदीश हमारा कल्याण करे ।

(३) उपासना ।

(ऋषिः—विश्वामित्रः । देवता—सविता)

भूर्भुवः स्वः ॥ तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धीमहि ॥ धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ३ ॥

अर्थ—(भूः) सत् (भुवः) चित् (स्वः) आनंदस्वरूप (सवितुः) जगदुत्पादक (देवस्य) ईश्वरके (तत्) उस (वरेण्यं) श्रेष्ठ

---

* इस मंत्रके प्रथम अर्धमें " मे (मेरा एकका)" एकवचनी प्रयोग है, और उत्तर अर्धमें "नः (हम सबका)" अनेकवचनी प्रयोग है । यह प्रयोग सूचित करता है कि, दोषोंको दूर करना और निर्दोष बननेका यत्न करना प्रत्येक व्यक्तिका कार्य है । परंतु शांतिका अनुभव करनेका अधिकार सबका अर्थात् संपूर्ण समाजका है ।

(भर्गः) तेजका हम सब (धीमहि) ध्यान करते हैं। (यः) जो (नः* धियः) हमारी बुद्धियोंको (प्रचोदयात्) विशेष प्रेरणा करे अथवा करता है ॥

भावार्थ—तीनों कालों में एकरूप रहनेवाले, ज्ञानस्वरूप, प्रकाशानंदमय, जगदुत्पादक और प्रेरक ईश्वर के श्रेष्ठ तेज का हम सब ध्यान करते हैं, क्यों कि वही ईश्वर हम सबकी बुद्धियोंको विशेष प्रकारसे प्रेरणा करनेवाला है।

(४) परमेश्वरके आनंदकारक रक्षणस्वभावका चिंतन।

(ऋषिः—वामदेवः। देवता—इन्द्रः)

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा ॥
कया शचिष्ठया वृता ॥ ४ ॥

अर्थ—(सदा-वृधः) सदासे महान् और (चित्रः) आश्चर्यकारक ईश्वर (कया ऊती) कल्याणमय रक्षणके द्वारा, (कया शचिष्ठया) कल्याणमय महाशक्तिद्वारा, और (वृता) आवर्तन अर्थात् वारंवार कर्म करनेद्वारा (नः) हम सबका (सखा) मित्र (आ भुवत्) होता है।

भावार्थ—सब कालमें सबसे श्रेष्ठ, सबसे विलक्षण ईश्वर, कल्याणकारक रक्षण के द्वारा और अपनी आल्हाददायक महाशक्ति के तथा वारंवार कर्म करनेके सामर्थ्यके साथ हम सबका मित्र होता है। अर्थात् मित्रके समान हम सबका भला करता है।

कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः ॥
दृढा चिदाऽऽरुजे वसु ॥ ५ ॥

अर्थ—(१) हे ईश्वर ! तूं (अन्धसः) अन्नादि भोगोंके (मदानां) आनंदोंसे भी (मंहिष्ठः) अधिक आनंदकारक और (सत्यः) तीनों का-

---

* इस मंत्रमें “नः” (हम सबकी) शब्द समुदाय, जाती, समाज अर्थात् अनेक मनुष्योंके सत्संग का बोधक है। सामूहिक उपासना इससे सिद्ध होती है।

लोंमें एक जैसा है, इसलिये (कः) कौन (त्वा) तुझे (मत्सद्) आनंदित कर सकता है ? तूं (दृढा-दृढानि) बलवान् (वसु) पृथिवी आदि पदार्थोंको भी (आ रुजे) छिन्नभिन्न करता है ।

भावार्थ—अन्न आदि भोगोंसे जो आनंद होता है, उससे अधिक आनंद तेरी प्राप्तिसे होता है । और तूं सदा एक जैसा रहता है । तेरेमें कभी न्यून, कभी अधिक नहीं होता । तुझे आनंद देनेवाला कोई नहीं, परंतु तूं हि सबको आनंदित करता है । तूं इतना बलवान है कि, पृथिवी आदि सब दृढ पदार्थोंको प्रलयकालमें छिन्नभिन्न करता है ।

अर्थ—(२) हे मनुष्य ! वह (कः) आनंदस्वरूप (सत्यः) तीनों कालोंमें एक जैसा रहनेवाला (मदानां मंहिष्ठः) आनंदोंके कारण महान श्रेष्ठ ईश्वर (त्वा) तुझे (अन्धसः) अन्नादिक भोगोंसे (मत्सत्) आनंदित करता है । और (दृढा वसु) बलवान धनोंको (आ रुजे) दुःख विनाशके लिये देता है ।

भावार्थ—वह आनंदमय, सत्य और महान ईश्वर अन्न आदि भोग और बलयुक्त धन, आपत्तियोंका विनाश करनेके लिये, मनुष्योंको देकर उनको आनंदित करता है ।

अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् ॥
शतं भवास्यूतिभिः ॥ ६ ॥

अर्थ—हे ईश्वर ! (नः) हम सबका, (सखीनां) मित्रोंका और (जरितॄणां) उपासकोंका (शतं ऊतिभिः) सेंकडों रक्षणोंके द्वारा (अभि सु अविता) सब प्रकारसे उत्तम रक्षक (भवसि) तूं होता है ।

भावार्थ—हम सबका, मित्रों और उपासकोंका तूं सेंकडों प्रकारोंसे अत्यंत उत्तम रक्षण करता है ।

(ऋषिः—दध्यङ्ङ् आथर्वणः, सुकक्षो वा । देवता—इन्द्रः)

कया त्वं न ऊत्याऽभि प्र मन्दसे वृषन् ॥
कया स्तोतृभ्य आ भर ॥ ७ ॥

अर्थ—हे (वृषन्) आनंदकी वृष्टि करनेवाले ईश्वर ! (त्वं) तूं (कया) आनंदकारक (ऊत्या) रक्षणके साथ (नः) हम सबको (अभि प्र मन्दसे) सब ओरसे आनंदित करता है। और (कया) उसी निज आनंदसे (स्तोतृभ्यः) तेरे गुणकीर्तन करनेवालोंकी (आ भर) पुष्टि करता है।

भावार्थ—आनंदकी वृष्टि करनेवाला ईश्वर, हम सबका सब प्रकारसे रक्षण करता हुआ सबको आनंदयुक्त करता है । और उसीके गुणोंका वर्णन करनेवालोंका भरण पोषण करता है।

(५) जगत्का एक अधिपति ।

(ऋषिः—दध्यङ् आथर्वणः । देवता—इन्द्रः)

इन्द्रो विश्वस्य राजति ॥ शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ८ ॥

अर्थ—(इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान ईश्वर (विश्वस्य) सबका (राजति) राजा है। वह (नः) हम सबके (द्विपदे) दो पांव वालोंके लिये (शं) कल्याणकर्ता तथा (चतुष्पदे) चार पांव वालोंके लिये भी (शं) कल्याणकर्ता (अस्तु) होवे ।

भावार्थ—परम ऐश्वर्यसंपन्न परमेश्वर सब जगत् का राजा है। वही मनुष्यों और पशुपक्षियोंके लिये कल्याण करनेवाला है।

(६) कल्याणप्राप्तिके लिये प्रार्थना ।

(ऋषिः—दध्यङ् आथर्वणः, गोतमो राहूगणपुत्रो वा । देवताः—मित्र-वरुण-अर्यमा-इन्द्र-बृहस्पति-विष्णवः)

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ ९ ॥

अर्थ—(मित्रः) सबका मित्र ईश्वर (नः शं) हम सबको कल्याणकारी होवे । (वरुणः) सबसे श्रेष्ठ ईश्वर (शं) कल्याणकारी होवे ।

(आर्यमा) न्यायकारी ईश्वर (नः शं) हम सबको कल्याणकारी (भवतु) होवे । (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान ईश्वर (नः शं) हम सबको कल्याणकारी होवे । (बृहस्पतिः) बडी वाणी का स्वामी, (विष्णुः) व्यापक और (उरु-क्रमः) जिसका महान क्रम है वह ईश्वर (नः शं) हम सबको कल्याणकारी होवे ।

भावार्थ—सबके साथ प्रेम करनेवाला, सबसे श्रेष्ठ, न्यायकारी, परम ऐश्वर्यवान, विश्वका अधिपति, सर्वव्यापक, और विशेष क्रमसे कार्य करनेवाला ईश्वर हम सबका कल्याण करे ।

(ऋषिः—दध्यङ् आथर्वणः । देवताः—वात-सूर्य-पर्जन्याः)

शं नो वातः पवताᳪ शं नस्तपतु सूर्यः ॥
शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु ॥ १० ॥

अर्थ—(वातः*) वायु (नः) हम सबकेलिये (शं) कल्याणमय होकर (पवतां) बहता रहे । (सूर्यः) सूर्य (नः) हम सबके लिये (शं तपतु) कल्याणकारक होकर तपता रहे । (कनिक्रदद्) गर्जना करनेवाला (पर्जन्यः देवः) पर्जन्य देव (नः) हम सबके लिये (शं) कल्याणकारक होकर (अभिवर्षतु) वृष्टि करे ।

भावार्थ—वायु, सूर्यका प्रकाश, और मेघकी वृष्टि इन सबसे हम सबका कल्याण होता रहे ।

(ऋषिः—दध्यङ् आथर्वणः । देवताः—अहः, रात्रिः, इन्द्राग्नी, इन्द्रावरुणौ, इन्द्रापूषणौ, इन्द्रासोमौ ।) (ऋग्वेदे शं न इन्द्राग्नी इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः)

अहानि शं भवन्तु नः शᳪ रात्रीः प्रति धीयताम् ॥
शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा

* वात आदि शब्दोंसे व्यक्त होनेवाले विशेष भावोंका वर्णन अंतके स्पष्टीकरणमें देखीए ।

रातहव्या ॥ शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रा-सोमा सुविताय शं योः ॥ ११ ॥

अर्थ—(नः) हम सबके लिये (अहानि) दिन (शं) कल्याणकारक (भवन्तु) हों । (रात्रीः) रात्रीका समय हम सबकेलिये (शं) कल्याणको (प्रति धीयतां) धारण करे । (अवोभिः) सब प्रकारके रक्षणोंके साथ (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान और तेजस्वी (नः शं) हम सबके लिये कल्याण-कारक (भवतां) हों । (रात-हव्यौ) अन्न देनेवाले (इन्द्रा-वरुणौ) ऐश्वर्यवान् और श्रेष्ठ (नः शं) हम सबका कल्याण करें । (इन्द्रा-पूषणौ) ऐश्वर्यवान् और पोषण कर्ता (वाजसातौ) अन्नके दानके समय (नः शं) हम सबका कल्याणकर्ता हों । (इन्द्रा-सोमौ) ऐश्वर्यवान और विद्वान (सुविताय) सुभिताके लिये और (शं-योः) रोगनिवारण और भयोंको हटानेके लिये (शं) कल्याणकर्ता हों ।

भावार्थ—हरएक समय ये सब शक्तियां हमको लाभदायक हों ।

(७) जलसे तृप्ति ।

(ऋषिः—दध्यङ् आथर्वणः । त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः । सिंधुद्वीपो वाऽम्बरीषः । देवता—आपः)

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ॥
शं योरभि स्रवन्तु नः ॥ १२ ॥

अर्थ—(देवीः) दिव्य (आपः) उदक (अभिष्टये) हमारा अभीष्ट सिद्धि करनेवाला, (नः शं) हम सबका कल्याण और (पीतये) तृषा शांत करनेवाला (भवन्तु) होवे । वह (नः शं-योः) हमारा रोग-निवारण और अनिष्ट दूर करनेके लिये (अभि स्रवंतु) बहता रहे ।

भावार्थ—दिव्य उदकसे हमारी तृषा शांत हो । हमारे रोग दूर हों और अनिष्टका नाश हो । तथा हमारा अभीष्ट अन्नादिक भोग हमें प्राप्त हो ।

(८) निष्कंटक भूमी।

(ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः। देवता—पृथिवी)

स्योना पृथिवि नो भवाऽनृक्षरा निवेशनी ॥
यच्छा नः शर्म सप्रथाः ॥ १३ ॥

अर्थ—हे (पृथिवि) भूमि ! (नः) हम सबके लिये (स्योना) सुखदायक (अनृक्षरा) कण्टकरहित और (निवेशनी) रहनेके लिये उत्तम स्थान देनेवाली (भव) हो। (नः) हम सबके लिये (स-प्रथाः) अत्यंत विस्तीर्ण होकर (शर्म) सुख (यच्छ) दे।

भावार्थ—रहनेका स्थान कण्टकरहित, आराम देनेवाला, विस्तीर्ण तथा सुखकारक होना चाहिए।

(९) जलसे बल और सुखकी प्राप्ति।

(ऋषिः—त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः। सिंधुद्वीपो वाऽम्बरीषः। देवता—आपः)

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन ॥
महे रणाय चक्षसे ॥ १४ ॥

अर्थ—(हि) निश्चयसे (आपः) उदक (मयो-भुवः) सुख उत्पन्न करनेवाला (स्थाः) है। इसलिये (ताः) वह उदक (नः) हम सबके (ऊर्जे) बल अन्न आदिकी वृद्धिको (दधातन) धारण करे। और (महे) महान (रणाय) शब्दके लिये और (चक्षसे) दर्शन अर्थात् ब्रह्मसाक्षात्कारकेलिये वह उदक कारण बने।

भावार्थ—जलसे सब सुख प्राप्त हो सकते हैं। इस लिये उससे हम सबको अन्न प्राप्त होकर सबका बल बढे; और वह जल महान शब्द-ज्ञानकी प्राप्ति कराके ईश्वरका साक्षात्कार होनेमें सहायता देनेवाला बने।

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ॥
उशतीरिव मातरः ॥ १५ ॥

अर्थ—(इह) इस संसारमें (यः) जो (वः) आपका अर्थात् जलका (शिव-तमः) अत्यंत कल्याणकारक (रसः) रस है (नः) हम सबको (तस्य) उस रसका (भाजयत) सेवन कराइए। (इव) जिस प्रकार (उशतीः) इच्छा करनेवालीं (मातरः) माताएं अपने पुत्रोंको दुग्धरस पिलातीं हैं।

भावार्थ—जलोंके अंदर जो आरोग्यवर्धक रस है उसका सेवन सबको करना चाहिए। जिस प्रकार अपने प्रियपुत्रको दूध पिलानेकी इच्छा करनेवाली माता स्वयं अपने पुत्रके पास पहुंच कर उसको दूध पिलाती है, ठीक उसीप्रकार उत्तम आरोग्यवर्धक जल हमारे पास आ जाय अर्थात् हमें नित्य प्राप्त हो।

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ॥
आपो जनयथा च नः ॥ १६ ॥

अर्थ—(यस्य) जिस रसकी (क्षयाय) प्राप्तिके लिये (जिन्वथ) आपकी गति है, (तस्मै) उस रसकेलिये (वः) आपके पास (अरं–अलं) पूर्णतासे हम सब (गमाम) प्राप्त होते हैं। हे (आपः) उदक! (च) और (नः) हम सबको (जनयथ) उन्नतिको प्राप्त कराओ।

भावार्थ—जिस आरोग्यकारक रसके लिये जलकी प्रसिद्धि है, उस रसकी पूर्ण प्राप्ति हम सबको होवे, और उससे हमारी उन्नति होनेमें सहायता होवे।

(१०) सच्ची शांतिकी प्राप्ति।

(ऋषिः—दध्यङ् आथर्वणः। देवता—ईश्वरः, ब्रह्म)

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः
शान्तिरोषधयः शान्तिः ॥ वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे
देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳशान्तिः शान्तिरेव
शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ १७ ॥

अर्थ—(द्यौः शांतिः) द्युलोक शांतिप्रदान करे, (अंतरिक्षं शान्तिः) अंतरिक्षलोक शांतिप्रदान करे, (पृथिवी शांतिः) भूमि शांतिप्रदान करे, (आपः शांतिः) जलसे शांति प्राप्त हो, (ओषधयः शांतिः) औषधियां शांति देनेवालीं हों, (वनस्पतयः शांतिः) वनस्पतियां शांति देनेवालीं हों, (विश्वे देवाः शांतिः) सब विद्वान शांति उत्पन्न करें, (ब्रह्म शांतिः) ज्ञान शांति देनेवाला हो, (सर्वं शांतिः) सब जगत् शांति स्थापित करे, (शांतिः एव शान्तिः) शान्ति भी सच्ची शांति देनेवाली हो, (सा शान्तिः) इस प्रकारकी सच्ची शांति (मा एधि) मुझे प्राप्त हो ।

भावार्थ—सब पदार्थ सच्ची शांति स्थापित करनेके लिये सहायक हों ।

(११) मित्रकी दृष्टिसे सबको देखना ।

दृते दृꣳह मा, मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ॥ मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ॥ मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ १८ ॥

अर्थ—हे (दृते) समर्थ ! (१) (मा दृंह) मुझे बलवान करो । (२) (सर्वाणि भूतानि) सब प्राणिमात्र (मा) मुझे (मित्रस्य चक्षुषा) मित्रकी दृष्टिसे (समीक्षन्तां) देखें । (३) (अहं) मैं (सर्वाणि भूतानि) सब प्राणियोंको (मित्रस्य चक्षुषा) मित्रकी दृष्टिसे (समीक्षे) देखता हूं । (४) हम सब (मित्रस्य चक्षुषा) मित्रकी दृष्टिसे (समीक्षामहे) देखें ।

भावार्थ—हे समर्थ ईश्वर ! (१) मुझे बलवान बनाओ । (२) सब प्राणिमात्र मुझे मित्रकी प्रेमदृष्टिसे देखें । (३) मैं सबको मित्रकी प्रेमदृष्टिसे देखता हूं । (४) हम सब परस्पर मित्रकी प्रेमदृष्टिसे देखें ।

(१२) परमेश्वरके जागृतिके साथ जीवन व्यतीत करना ।

दृते दृꣳह मा ज्योक्ते संदृशि जीव्यासं ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम् ॥ १९ ॥

अर्थ—हे (इते) शक्तिमान् ! (मा दृंह) मुझे शक्तिमान करो। (ते सं-दृशि) तेरे उत्तम दर्शनमें (ज्योक्) बहुत समयतक (जीव्यासं) मैं जीता रहूं। (ते संदृशि ज्योक् जीव्यासम्) तेरे साक्षात्कारमें मैं दीर्घ-आयुतक जीता रहूं।

भावार्थ—हे शक्तिमान ईश्वर! मुझे शक्तिमान करो। तेरी स्मृति जागृत रखता हुआ मैं बहुत दीर्घ आयुष्य व्यतीत करूं।

(१३) परमेश्वरको नमन।

(ऋषिः—लोपामुद्रा। देवता—अग्निः)

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे ॥ अन्याँ॒स्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यँ॒ शिवो भव ॥२०॥

अर्थ—(हरसे) दुष्टताका हरण करनेवाले (शोचिषे) पवित्रता बढानेवाले और (अर्चिषे) तेज फैलानेवाले (नमः ते, नमः ते) तेरे लिये हमारा नमस्कार (अस्तु) हो। (ते हेतयः) तेरे शस्त्र (अस्मत् अन्यान्) हमको छोडकर दूसरोंको (तपन्तु) ताप देते रहें। (पावकः) पवित्रता करनेवाला ईश्वर (अस्मभ्यं) हम सबके लिये (शिवः भव) कल्याण-कारी होवे।

भावार्थ—दुष्टता दूर करनेवाले, पवित्रता करनेवाले और तेजस्विता बढानेवाले ईश्वरको हमारा नमस्कार है। ऐसा कभी प्रसंग न आवे की ईश्वरका दण्ड हमारे ऊपर चले, अर्थात् हमारा आचरणहि सदा ऐसा होवे की दण्ड भोगनेका समय कभी न आवे। पवित्र ईश्वरकी दया हमारे ऊपर सदा बरसती रहे।

(ऋषिः—दध्यङ् आथर्वणः। देवता—ईश्वरः)

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे ॥
नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे ॥ २१ ॥

अर्थ—(वि-द्युते ते) विशेष तेजःस्वरूप तेरे लिये (नमः अस्तु)

नमस्कार हो । (स्तनयित्नवे ते) महान शब्द करनेवाले तेरे लिये (नमः) नमस्कार हो । हे (भगवन्) ऐश्वर्यसंपन्न ! (ते नमः अस्तु) तेरे लिये नमस्कार हो । (यतः) क्यों कि तूं (स्वः) अपने निज आनंदमें (सं-ईहसे) सम्यक् चेष्टा करता है ।

भावार्थ—तेजोमय, शब्दमय, और ऐश्वर्यमय ईश्वरके लिये हमारा नमस्कार है । जो ईश्वर अपने निज आनंदसेहि सदा आनंदित रहता है और उस आनंदका दान करता है ।

(१४) अभयदान ।

यतो॑ यतः स॒मीह॑से॒ ततो॑ नो॒ अभ॑यं कुरु ॥
शं नः॑ कुरु प्र॒जाभ्योऽभ॑यं नः प॒शुभ्यः॑ ॥ २२ ॥

अर्थ—(यतः यतः) जिस जिस स्थानसे तूं (सं-ईहसे) कर्म करता है (ततः) उस उस स्थानसे (नः) हमारे लिये (अ-भयं) अभयदान (कुरु) करो । (नः प्रजाभ्यः) हमारी प्रजाके लिये (शं अभयं) कल्याणकारक अभय (कुरु) करो और (नः पशुभ्यः) हमारे पशुओंके लिये भी अभयदान करो ।

भावार्थ—हे ईश्वर ! जिस जिस स्थानसे तुम्हारा कर्म चलता है, उस स्थानसे हमारे लिये, हमारी प्रजाओं और पशुओंके लिये कल्याणमय अभयदान करो ।

(१५) जनताका द्वेष करनेवालेका नाश ।

(ऋषिः—दध्यङ् आथर्वणः । देवता—सोमः)

सु॒मि॒त्रि॒या न॒ आप॒ ओष॑धयः सन्तु, दु॒र्मि॒त्रि॒यास्तस्मै॑
सन्तु॒ ॥ यो॒ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं च॑ व॒यं द्वि॒ष्मः ॥ २३ ॥

अर्थ—(आपः ओषधयः) जल और औषधियां (नः) हम सबके लिये (सुमित्रियाः) हितकारक (सन्तु) होवें । तथा (तस्मै) उस एकके लिये (दुर्मित्रियाः) दुःखकारक (सन्तु) होवें कि, (यः) जो

अकेला दुष्ट (अस्मान् द्वेष्टि) हम सबका द्वेष करता है (यं च) और जिस एकका (वयं) हम सब (द्विष्मः) द्वेष करते हैं।

भावार्थ—हम सबको जल, औषधि आदि पदार्थ हितकारक होवें। परंतु जो थोडे आदमी सबका द्वेष करते हैं, और जिन थोडे आदमियोंका अन्य सब द्वेष करते हैं, ऐसे अल्प दुष्ट मनुष्योंको जल और औषधि आदि पदार्थ अहितकारक होवें।

(१६) ज्ञानदृष्टिका उदय और दीर्घ आयुष्यकी प्राप्ति।

(ऋषिः—दध्यङ् आथर्वणः। वसिष्ठो वा। देवता—सूर्यः)

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ॥ पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ २४ ॥

अर्थ—(तत्) वह (देव-हितं) ज्ञानियोंका हित करनेवाला (शुक्रं) शुद्ध, पवित्र (चक्षुः) ज्ञाननेत्र (पुरस्तात्) पहिलेसेहि (उत् चरत्) उदित हुआ है। उसकी सहायतासे (शरदः शतं पश्येम) सौ वर्षपर्यंत देखें, (शरदः शतं जीवेम) सौ वर्ष जीते रहें, (शरदः शतं शृणुयाम) सौ वर्ष सुनें, (शरदः शतं प्रब्रवाम) सौ वर्ष प्रवचन करें, (शरदः शतं अ-दीनाः स्याम) सौं वर्ष दीन न होते हुए रहें, (शरदः शतात् भूयः च) और सौं वर्षोंसे अधिक आनंदसे रहें।

भावार्थ—जिससे सबका हित होता है, उस ज्ञानकी प्राप्ति पहिले करनी चाहिये, उसी ज्ञानसे हमारी आयु बढेगी, हमारीं इन्द्रियों कीं शक्तियां सब की सब मृत्युके समयतक अच्छी अवस्थामें रहेंगीं। और सौं सेभी अधिक आयु होगी।

यजुर्वेद अ० ३६ का स्वाध्याय—स्पष्टीकरण।

मंत्र १

(१) वाणी, मन, प्राण और ज्ञानकी शक्तियां।

(१) ऋचं वाचं प्रपद्ये ॥

(अहं वाचं वाक्शक्तिं अवलम्ब्य ऋचं सूक्तमयं ऋग्वेदं प्रपद्ये शरणं गच्छामि।)

मैं (वाचं) अपनी वाणीकी शक्तिका अवलंबन करके (ऋचं) सूक्त-मय ऋग्वेदकी (प्रपद्ये) शरण लेता हूं।

"प्र-पद्" धातुके अर्थ "शरण लेना, प्राप्त होना, पास जाकर तल्लीन होना, आश्रय लेना, आगे बढना, उन्नति करना, कामयाब होना" इत्यादि हैं। ये अर्थ ध्यानमें धर कर "ऋचं प्रपद्ये" का अर्थ निम्न प्रकार हो सकता है:—"मैं ऋचाकी शरण लेता हूं, ऋचाको प्राप्त करता हूं, ऋचाको प्राप्त करके उसमें लीन होता हूं, ऋचाका आश्रय लेकर, आगे बढकर, उन्नति प्राप्त करनेमें कामयाब होता हूं।"

ऋचा को प्राप्त करना वाणीका अवलंबन करनेके पश्चात हि होना है, क्यौं कि ऋचा अथवा ऋग्वेद शब्द-राशी होनेके कारण वाणीकी शक्तिद्वारा हि उसके पास मनुष्य पहुंच सकता है। ऋग्वेद का स्वरूप सूक्त-रूप है। "सूक्त" उसको कहते हैं कि, जो (सु-उक्ति) उत्तम भाषण, सु-भाषण, सुभाषित हो। उत्तम भाषण से वाणीकी शुद्धि होती है। ऋग्वेदमें सूक्त अर्थात् उत्तम भाषण और उत्तम विचारयुक्त वाक्य हैं; उनकी शरण लेनेसे वाणीकी और आत्माकी शुद्धि होती है। इसलिये कहा है:—

भद्रं वद गृहेषु च ॥
भद्रं वद पुत्रैः ॥ ऋग्वेद खिल. २।४३।२ ॥

"अपने अपने घरों में कल्याणकारक भाषण किया करो। लडकोंके साथ

उत्तम भाषण बोलो" अर्थात् कभी बुरा शब्द, गालीयां-अपशब्द-मुंहसे न निकले। तथाः—

वाचं वदत भद्रया ॥ अथर्व. ३।३०।३॥

"कल्याण करनेवाला भाषणहि आपसमें बोलो" बुरा भाषण करनेसे अनर्थ होते हैं। सब झगडोंके बीचके तय के अंदर देखा जाय, तो वहां अपशब्द हि दिखाई देंगे। इस लिये कहा है कि "अपनी वाचा-शक्तिको लेकर ऋग्वेद के सूक्तोंकी शरण लेनी चाहिए।" ऋग्वेदके सूक्त ऐसे हैं कि, वे वाणी को शुद्ध करके आत्माका उद्धार कर सकते हैं। देखीएः—

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्
यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः ॥
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति
य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ ऋ. १।१६४।३९ ॥

(यस्मिन्) जिसमें (विश्वे देवाः) सब देवताएं, सब दिव्य गुण, (अधि निषेदुः) रहते हैं, उसी (ऋचः) ऋचाके (परमे अक्षरे) अत्यंत अविनाशी अक्षरोंमें (व्योमन्=वि[1]-ओम्[2]-अन्[3]) प्रकृति[1]-परमेश्वर[2]-जीवात्मा[3] रहते हैं। (यः) जो मनुष्य (तत्) उस बातको (न वेद) नहीं जानता, वह न जाननेवाला पुरुष (ऋचा) वेदमंत्रोंसे (किं करिष्यति) क्या करेगा? अर्थात् उसको कोई लाभ नहीं होगा; परंतु (ये) जो मनुष्य (इत् तत्) निश्चयसे उस बातको (विदुः) समझेंगे (ते इमे) वे पुरुष ही (सं आसते) एक होकर उत्तमतासे स्थिर बैठ सकते हैं॥

वेदोंके मंत्रोंमें देवताओंके मिषसे प्रकृति-परमेश्वर-जीवात्माका ज्ञान भर रखा है। इस बातको जो जानता है, वही वेदमंत्रोंसे लाभ प्राप्त कर सकता है और वही निडर होकर स्थिरताको प्राप्त हो सकता है। परंतु जो इस बातको नहीं जानते, उनको वेद पढनेसे कोई लाभ नहीं होता। ऋचाओंका उपयोग अथर्ववेदमें कहा हैः—

ऋग्भ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान्
द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ अथर्व० १०।५।३०॥

"(यः) जो अकेला (अस्मान्) हम सबका (द्वेष्टि) द्वेष करता है

और (वयं) हम सब (यं) जिस अकेलेका (द्विष्मः) द्वेष करते हैं, (तं) उस बहुजनविरोधी मनुष्यके साथ हम सब (ऋग्भ्यः) ऋचाओं अर्थात् सूक्तोंके अनुकूल (निः भजामः) बर्ताव करते हैं ।"

एक मनुष्यको अथवा अल्प संख्यामें रहनेवाले मनुष्योंको उचित नहीं की, वे सब अन्य बहुजनसमाजका व्यर्थ द्वेष करें, या उनको नुकसान पहुचाएं । जिस एकके विरुद्ध सब बोलते हैं, और जो एक सबकी हानि करनेके लिये कटिबद्ध होता है वह समाज-घाती होता है । उसको सूक्तों अर्थात् उत्तम उपदेशोंद्वारा समझाना चाहिये, और उसका मन उच्च बनाना चाहिये । यही वेदके सूक्तोंका काम है । यही वैदिक उपदेशका महत्त्व है । और देखीए:—

ऋग्वेदस्य पृथिवी-स्थानम् ॥
ऋचो विद्वान् पृथिवीं वेद ॥ गोपथ ॥ १।५।२५ ॥

"ऋग्वेदका पृथिवी स्थान है, इसलिये जो ऋग्वेदको यथावत् जानता है वह संपूर्ण पृथिवीको अर्थात् पार्थिव पदार्थोंको जानता है" ऐसा गोपथ ब्राह्मणमें कहा है । तथा:—

ऋचां प्राची महती दिगुच्यते ॥ तै० ब्रा० ३।१२।९।१ ॥

"ऋचाओंकी बडी पूर्व दिशा कही जाती है" अर्थात् जिसप्रकार पूर्व दिशासे संपूर्ण विश्वको प्रकाश देनेवाला सूर्य उदय होता है, उसी प्रकार ऋचाओंसे संपूर्ण विश्वके ज्ञानका उदय होता है । ज्ञानरूपी सूर्यका उदय करानेवाली पूर्वदिशा ऋग्वेदहि है ।

इस प्रकार ऋग्वेदका महत्त्व वैदिक वाङ्मयमें वर्णन किया है । वाणीकी पवित्रताके विषयमें ऋग्वेदमें लिखा है:—

सहस्रधारे वितते पवित्र आ
वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः ॥
रुद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः
स्पशः स्वञ्चः सुदृशो नृचक्षसः ॥ ऋ. ९।७३।७॥

(वितते) विस्तृत (सहस्र-धारे) हजारों धाराओं अर्थात जल-प्रवाहोंसे युक्त (पवित्रे) शुद्ध करनेवाले स्रोतमें (मनीषिणः कवयः) बुद्धि-

मान ज्ञानी अपनी (वाचं) वाणीको (आ पुनन्ति) पवित्र करते हैं। (एषां) इन विद्वानोंके शब्द (* रुद्रासः) भय उत्पन्न करनेवाले, परंतु (इषिरासः) बडे प्रभावशाली, (अ-द्रुहः) किसीका द्रोह अथवा घात न करनेवाले, (स्पशः) सावधानतासे युक्त, (स्वञ्चः=सु-अञ्चः) उत्तम शुद्धतायुक्त, (सु-दृशः) उत्तम दिव्य दृष्टीसे युक्त, और (नृ-चक्षसः) मनुष्योंको प्रकाशयुक्त करनेवाले होते हैं।

जिसमें बुद्धिमान कवी अपनी वाणीके मल धोते हैं, वह पवित्र स्रोत परमात्माका सत्य स्वरूप और सत्य ज्ञान है। उसमें शुद्ध हुई हुई वाणी उक्त गुणोंसे युक्त होती है।

इस प्रकार वाणीकी शुद्धता करनेके विषयमें और वाणीको ऋग्वेदमें लीन करनेके विषयमें वेदकी संमति प्रतीत होती है। अब मंत्रका अगला उपदेश देखना है:—

(२) मनो यजुः प्रपद्ये॥

(अहं मनः स्वकीयां मननशक्तिं अवलम्ब्य यजुः अध्यायमयं सत्कार-संगति-दानमयकर्मप्रेरकं वा यजुर्वेदं प्रपद्ये शरणं उपैमि।)

मैं (मनः) अपनी मननशक्तिको लेकर (यजुः) यजुर्वेदकी शरण लेता हूं।

यजुर्वेद में अध्याय होते हैं। अध्याय, अध्ययन ये शब्द "पठन" अर्थ बताते हैं। + अध्यायिन् शब्द "विद्यार्थी अर्थात् जिसनें अपना मन पढा-

---

* (रुद्र) Dreadful भयानक, Great महान, Driving away evil दुष्टताको दूर करनेवाला, Praise-worthy स्तुत्य; (रुत्+र) शब्दशास्त्रका उपदेश करनेवाला। (इषिर) Refreshing उत्साह देनेवाला, Powerful शक्तिमान, Active, प्रयत्नशील। (अ-द्रुह) झगडा न करनेवाला, (स्पशः) Guarding, watchful, सावधानमय, दक्षतायुक्त। (स्वञ्चः) Clear शुद्ध, मलरहित, Shining प्रकाशयुक्त, चमकीला। (नृ-चक्षस्) Guiding men नेता लोग, मनुष्योंको शिक्षा-ज्ञान आदि देनेवाला॥ + अध्ययन न कर-नेके दिनका नाम 'अनध्याय' है। अन्+अध्याय=छुट्टीका दिन॥

ईमें लगाया है" ऐसा अर्थ व्यक्त करता है। 'यजुः' शब्दका अर्थ "सत्कार, संगति और उपकारमय कर्मकी प्रेरणा करनेवाला" ऐसा है। सत्कार-संगति-दानात्मक कर्म यज्ञनामसे प्रसिद्ध है। यज्ञ उस कर्मको कहते हैं कि जिस से पूज्योंका सत्कार होवे, संगति अर्थात् संगठन होवे और दान अर्थात् परोपकार, लोकोपकार होवे। इस प्रकारके कर्म यज्ञ होते हैं, ऐसे यज्ञोंका उपदेश यजुर्वेद करता है। इस प्रकारके यजुर्वेदके अध्ययनमें अपना मन लगाना इस मंत्रको अभीष्ट है।

मन ऐसे अध्ययनमें लगाना चाहिए कि, जिससे पूज्योंका सत्कार करनेमें, संगठन बढानेवाले कार्य करनेमें और लोकोपकार के कार्य करनेमें मनुष्योंकी प्रवृत्ति हो सके। मनके विषयमें वेद कहता है:—

यत्ते दित्सु प्रराध्यं
मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ॥ ऋ. ५।३९।३॥ सामवे० २।५२४

(ते) तेरा (दित्सु) दानशील, उदार (प्र-राध्यं) सिद्ध और शांत (मनः) मन (बृहत् श्रुतं) बहुत ज्ञानयुक्त, बहुश्रुत (अस्ति) है।

अर्थात मन परोपकारशील, शांत और ज्ञानसे भराहुआ होना चाहिए। मनका स्वरूप और उसका हेतु निम्नमंत्रमें वर्णन किया है:—

ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कं
मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः ॥
विश्वे देवाः समनसः सकेता
एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु ॥ ऋ. ६।९।५॥

(कं) आनंददायक (ध्रुवं ज्योतिः) स्थिर तेज (दृशये) ज्ञान लेनेके लिये (अन्तः निहितं) अंदर अर्थात् अंतःकरणके स्थान में रखा है। यही (मनः) मन (पतयत्सु) दौडनेवालों के अंदर (जविष्ठं) अत्यंत वेगवान है। (स-केताः) एक उद्देश से प्रेरित हुए हुए (समनसः) एक मतवाले (विश्वे देवाः) सब ज्ञानी (एकं क्रतुं) एक हि कार्यको (साधु) उत्तम रीतिसे (अभि-वि-यन्ति) करते हैं।

इस मंत्रमें कहा है कि, मन तेजोरूप, आनंददायक और वेगवान है, उसीसे सब जाना जाता है। इस प्रकारके सुसंस्कृत मनसे युक्त हुए हुए

ज्ञानी पुरुष जिस उद्देश से जिस कार्यको करना चाहते हैं, उसको उत्तमतासे सिद्ध करते हैं । और देखीए:—

भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ॥
अधा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणन् गावो
न यवसे विवक्षसे ॥ ऋ. १०।२५।१॥

हे ईश्वर ! (नः) हम सबको (भद्रं मनः) कल्याणकारक मन (भद्रं दक्षं) कल्याणकारक बल (उत) और (भद्रं क्रतुं) कल्याणकारक कर्म (अपि वातय) प्राप्त कराओ । (अधा-अथ) पश्चात् (ते सख्ये) तेरी मित्रतामें और (अन्धसः=अन्+धसः) प्राण शक्तिके (मदे) हर्ष में हम सब (वि रणन्) विशेष प्रकार गायन करते रहें । (न गावः) जिस प्रकार गौवें (वः विवक्षसे यवसे) आपके बडे जौ-धान-के खेत में आनंद करतीं है ।

इस मंत्रमें "भद्रं मनः" ये दो शब्द और "तन्मे मनः शिव–संकल्पमस्तु ।" (वह मेरा मन शिवसंकल्पमय होवे) यह यजुर्वेद अ. ३४।१–६ का वचन एकही भाव रखता है ।

भद्रं मनः । (ऋ. १०।२५।१)
शिवसंकल्पं मनः । (यजुः ३४।१–६)

ये दोनों वेदोंके भाव एकसेही हैं । इसी दृष्टिसे ये सब सूक्त देखने चाहिए । तथाः—

मनो ज्योतिर्जुषतम् ॥ तैत्ति० सं. १।५।३।२॥
मनो जूतिर्जुषतम् ॥ यजु. वा. सं. २।१३॥

"ज्योतीरूपी मनका (जुषतं) प्रेमके साथ उत्तम उपयोग कीजिए ।" तथाः—

उषो ये ते प्र यामेषु युञ्जते
मनो दानाय सूरयः ॥ ऋ. १।४८।४॥

"(उषः यामेषु) उषःकालके समय (ये ते सूरयः) जो कोई ज्ञानी (दानाय मनः) दानकेलिये मन (प्र युञ्जते) लगाते हैं ।" ज्ञानी लोग सवेरेसेहि अपना मन परोपकारके कार्योंमें डालते हैं । तथाः—

अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि
भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥
सो अस्य कामं विधतो न रोषति
मनो दानाय चोदयन् ॥ ऋ. ८।९९।४॥ अथर्व.२०।५८।२॥

(❀ अन्-अर्श-रातिं) जिसका दान हानिकारक नहीं है और जो (वसु-दां) धन देता है उसकी (उप-स्तुहि) स्तुति करो। (इन्द्रस्य) इन्द्र-परमात्माके (रातयः) दान (भद्राः) कल्याणकारक हैं । जो (अस्य कामं) इस ईश्वरकी इच्छा के अनुसार (विधतः) कार्य करता है, उस पर (सः) वह (न रोषति) क्रोध नहीं करता। और (मनः) मन (दानाय) दानके लिये (चोदयन्) प्रेरित करता है ।

मन दानके कर्मों में लगाना चाहिए, दान अच्छीप्रकार देना चाहिए, जिसका परिणाम हितकारक हो सके। कभी अनर्थ उत्पन्न करनेवाला दान नहीं देना चाहिए। इसप्रकार मनको किस कार्यमें प्रवृत्त करना चाहिए इसका वर्णन इस मंत्रमें है। मन बहुत चंचल है, उसको वशमें रखना बहुत कठीन है, यह सबका अनुभव है। चंचल मनका निरोध अभ्याससे हो सकता है। मन एकाग्र करनेके समय, जब वह भटकने लगता है, तब उसको वापस लाकर उसी स्थान पर स्थिर करना चाहिए; इस प्रकार बार-बार करनेसे मन एकाग्र हो सकता है। इस विषयमें "मन-आवर्तन-सूक्त" संपूर्ण देखने योग्य है। परंतु यहां केवल दो ही मंत्र देता हूंः—

यत्ते विश्वमिदं जगन्मनो जगाम दूरकम् ॥
तत्त आवर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ १० ॥
यत्ते भूतं च भव्यं च मनो जगाम दूरकम् ॥
तत्त आवर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ १२ ॥ ऋ. १०।५८॥

"जो तेरा मन इस (विश्वं) सब विश्वमें दूर दूर (जगाम) भटकता है, उसको (इह) यहां (आवर्तयामसि) वापस लाता हूं, ताकि स्थिति और जीवन उत्तम होवे ॥ जो तेरा मन भूत भविष्य वर्तमानके दूर दूरके

* (अन्) नहीं (अर्श) दुःख, हानि, नाश (रातिं) दान अर्थात् जिसमें हानि नहीं ऐसा दान ।

बातोंमें भटकता है, उसको मैं स्थिति और जीवन के लिये यहां वापस लाता हूं।"

यह सब सूक्त ऋ. १०।५८। में देखने योग्य है। इस सूक्तका ऋषि "गोपायनः" (गो-प-अयन) अर्थात इंद्रियपालक है। (गो) इंद्रियोंके (प) पालनमें (अयन) गति अर्थात प्रयत्न करनेवाला। यह ऋषि है और "मन-आवर्तनं" अर्थात् "मनको वापस लानेका अभ्यास" ही देवता है। इसके साथ शिवसंकल्प सूक्त (यजु. वा. सं. ३४ अ.) देखने योग्य है। उनमेसे एक मंत्र नीचे देता हूं:—

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयते-
ऽभीशुभिर्वाजिन इव ॥ हृत्प्रतिष्ठं यद-
जिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु

यजु. वा. सं. ३४।६

"जिसप्रकार उत्तम सारथि घोडोंको चलाता है, उसप्रकार मनुष्योंके इंद्रियरूपी अश्वोंको जो चलाता है और जो हृदयमें रहता हुआ, अजर और वेगवान है, वह मेरा मन उत्तम विचारयुक्त होवे।" और:—

मनो-वाक्कायकर्माणि मे शुध्यन्ताम् ॥
तैत्ति० आ० १०।६६॥ (आंध्र०)

"मेरे मन, वाणी और शरीर से सब पवित्रही कर्म होते रहें।" इस प्रकारकी इच्छा हरएकको धरनी चाहिए। तथा:—

मनो हविः ॥ तै. आ. ३।६।१॥
मनो यज्ञेन कल्पताम् ॥ यजु. वा. सं. १८।२९; २२।३३॥
तै. सं. १।७।९।२॥

"मनको हवि समझो" और "उस मनको यज्ञके साथ—यज्ञमें—अर्पण करो।" मनका अहंकार नष्ट करनेकी यही युक्ति है।

इस प्रकार मनका स्वरूप, उसके धर्म, उसका कार्य और उसको स्वाधीन करनेका उपाय वेदमंत्रोंमें कहा है। इस प्रकारके प्रभावशाली मनको लेकर यजुर्वेद अर्थात् "यज्ञवेद" की शरण लेनी है। यही भाव

"मनो यज्ञेन कल्पतां" इस यजुर्वेदमंत्रमें कहा है । इसप्रकार इस मंत्रका आशय प्रतीत होता है । अब इस मंत्रके तीसरे उपदेशका विचार करना है:—

(३) साम प्राणं प्रपद्ये ॥

(अहं प्राणं स्वकीयां जीवनशक्तिं अवलंब्य साम गीतिमयं सामवेदं प्रपद्ये प्राप्नोमि ।)

मैं (प्राणं) अपनी जीवनशक्तिको लेकर (साम) शांति उत्पन्न करनेवाले गीतिमय सामवेदको (प्रपद्ये) प्राप्त होता हूं ।

इसमें प्राणका सामके साथ संबन्ध बताया है । "प्र+अन्" शब्दका "विशेष प्रकारका जीवन" ऐसा मूल अर्थ है, और * "सामन्" शब्दके "सामगायन" शान्ति करनेका उपाय, चित्तको स्थिर करनेका अभ्यास, आत्मिक शांति प्राप्त करनेका यत्न, इतने अर्थ हैं । अर्थात् "विशेष जीवनसे शांति प्राप्त करनेका प्रयत्न" इस मंत्रको बताना है ।

प्राणायामके अभ्याससे चित्तकी चंचलता नष्ट होती है, और मन स्थिर होता है । मनकी स्थिरतासे शांति प्राप्त होती है । प्राणोंकी उपासना उपनिषदोंमें अनेक स्थानपर वर्णन की है । वेदभी उसीका वर्णन कर रहा है:—

प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते ॥
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ॥ ११ ॥
प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते ॥
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥
—अथर्व. ११।४ ॥

"प्राण हि मृत्यु है और प्राण हि उष्णता अथवा सहनशक्ति है । इसलिये (देवाः) विद्वान (प्राणं उपासते) प्राणकी उपासना करते हैं ।

* सामन् calming, tranquilizing, means of sucoess against an enemy; साम्=सान्त्वप्रयोगे । साम=शांति, शांतिका उपाय, विरोधी शत्रुको वश करनेका उपाय ।

प्राण सत्यवादी मनुष्यको उत्तम लोकोंमें पहुंचाता है ॥ (मातरि-श्वानं) आकाशमें व्यापक जो सूक्ष्म वायु है उसको (प्राणं आहुः) प्राण कहते हैं। (वातः) वायुको हि प्राण कहते हैं। भूत भविष्य वर्तमान कालीन सब पदार्थ प्राणमें हि रहते हैं। (प्राणे) प्राणमेंहि सब कुछ रहा है ॥"

"तक्मा" शब्दके दो अर्थ हैं। एक बीमारी जिसमें ज्वरके साथ फोडे फुन्सीयां आतीं हैं और दूसरा अर्थ सहनशक्ति, हंसना, आनंदकरना इत्यादि है। "तंक—कृच्छ्रजीवने (कष्टका जीवन)" इस धातूसे बननेवाले "तक्मा" शब्दका पहिला अर्थ होता है और "तक्—हसने-सहने च (हंसना और सहना)" इस धातूसे बननेवाले "तक्मा" शब्दसे दूसरा अर्थ सिद्ध होता है। इस मंत्रमें दूसरा अर्थ अभीष्ट है; क्यों कि मृत्यु शब्दके साथ विरोध रखनेवाली अवस्था तक्मा शब्दनें बतानी है। मृत्यु शब्द कष्टका जीवन बताता है और तक्मा शब्द आरोग्यका जीवन बताता है। दोनों अवस्थाएं प्राणके आश्रय से रहनेवालीं हैं।

सत्यनिष्ठ सत्यवादी पुरुषकी योग्यता प्राणकी उपासनासे बढती है। योगशास्त्रमें प्राणायामका महत्त्व इसीकारण वर्णन किया है। प्राण स्थिर रहनेसे मनकी एकाग्रता होती है, और प्राण चंचल होनेसे मन अशांत होता है। प्राणका अन्नके साथ संबंध है:—

प्राणमन्नेनाप्यायस्व ॥ तै. आ. १०।३६।१॥

महा. उ. १६।१॥

"अन्नसे प्राणकी वृद्धि करो।" अन्नसे प्राणकी शक्ति बढती है। अन्न शब्दसे यहां सात्विक अन्न विवक्षित है। योग्य पदार्थ खानेसे आयु बढती है और अयोग्य पदार्थ खानेसे बीमारियां बढकर मृत्यु के पास जलदी जाना होता है। इस लिये प्राणकी उपासना करनेवालोंको उचित है कि वे उत्तम निरोगी सात्विक अन्न भक्षण करें। इस प्रकार रक्षण कियाहुआ प्राणः—

प्राणो रक्षति विश्वमेजत् ॥ तै. ब्रा. २।५।१।१॥

"(विश्वं एजत्) सब हलचल करनेवालेका प्राण रक्षण करता है।"

प्राणकी शक्ति सब शक्तियोंसे बडी है, इसलिये उसको यज्ञमें अर्पण करनेका उपदेश निम्नमंत्रमें आया है:—

प्राणो यज्ञेन कल्पतां ॥ यजु. वा. सं. ९।२१॥;१८।२९॥; २२।३३॥

प्राणो हविः ॥ मैत्रा० सं. १।९।१॥ तै. आ. ३।१।१॥

"प्राणको यज्ञमें समर्पण करो" क्यों कि "प्राण हि हवि" है। प्राणोंकी रक्षा करनी अपने उपभोगोंके लिये नहीं, परंतु प्राणोंको हवनसामग्री समझकर, जिसप्रकार हवनसामग्रीका यज्ञमेंहि उपयोग किया जाता है, उस प्रकार सत्कार-संगति-दानरूप कर्मोंमें अपने प्राणोंका अर्पण करनेके-लिये तैयार रहना चाहिए। प्राण और आयु बहुत अंशमें समानहि अर्थ बताते हैं, देखीए:—

प्राणो हि भूतानामायुः ॥ तै. आ. ८।३।१॥ तै. उ. २।३।१॥

"प्राणियोंकी जो आयु है वही प्राण है।" इसप्रकारके प्राण शक्तिको सामवेदके साथ लगाना है। सामवेद उपासना (ईश्वरकी भक्तिके साथ मानसपूजा) की सहायता करनेवाले मंत्रोंकी गायनपद्धतिका वर्णन करता है। उपासना, भक्ति आदिका गानेके साथ अत्यंत घनिष्ट संबंध है। चित्त एकाग्र होनेके लिए गायनकी बडी सहायता होती है। इन सब बातोंका इस मंत्रोपदेशके साथ विचार करके बोध लेना चाहिए। अब इस मंत्रके चतुर्थ उपदेशका विचार करना है:—

(४) चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये ॥

(अहं श्रोत्रं मदीयां श्रवणशक्तिं अवलंब्य चक्षुः दिव्यचक्षुभूतं अंगिरसो वेदं अथर्ववेदं प्रपद्ये।

मैं (श्रोत्रं) अपनी श्रवणशक्तिको लेकर (चक्षुः) दिव्यज्ञाननेत्रके समान आंगिरस अथर्ववेदकी (प्रपद्ये) शरण लेता हूं।

इस मंत्रभागमें "चक्षु" शब्दसे अथर्ववेदका ग्रहण लेना उचित है। ऐसा अर्थ करनेके लिये निम्न आधार हैं। (१) पहिला प्रमाण क्रमप्राप्ति है:—

१ वाचं—ऋचं... ... (ऋग्वेदं)........प्रपद्ये ।
२ मनः—यजुः... ... (यजुर्वेदं)......... ,, ।
३ प्राणः—साम... ...(सामवेदं)......... ,, ।
४ श्रोत्रं—चक्षुः... ...(अथर्ववेदं)......... ,, ।

इसमें देखनेसे ऋग्यजुःसामके क्रमसे, चतुर्थ "चक्षुः" शब्द चतुर्थ अथर्ववेदका वाचक प्रतीत होता है। अथर्ववेदको ब्रह्मवेद कहते हैं। ब्रह्म-शब्द ज्ञानवाची है । ज्ञाननेत्र, ज्ञानदृष्टि आदि शब्दोंमें चक्षुइंद्रियका ज्ञानके साथ संबंध प्रतीत होता है। इस लिये चक्षुशब्दसे ज्ञानवेद, ब्रह्मवेद अथवा अथर्व-वेदका ग्रहण हो सकता है। सबही वेद ज्ञानरूप हैं। परंतु यहां इसी वेदको ज्ञानवेद क्यों कहा ? ऐसी कोई शंका कर सकते हैं। स्तुति, यज्ञ और उपासना ये तीन ऋग्यजुःसामके कार्य होनेके पश्चातहि दिव्यदृष्टि खुल सकती है, और सच्चा ज्ञान प्राप्त हो सकता हैः—

त्रयी	ऋग्वेद	स्तुति	वाणी	सुभाषण	उत्तमविचार	प्रशंसावेद
	यजुर्वेद	यज्ञ-(कर्म)	मन	अध्ययन	गुरुभक्ति	कर्मवेद
	सामवेद	उपासना	प्राण	प्राणायाम	शान्ति	उपासनावेद
	अथर्ववेद	ज्ञान	श्रवण	स्थिरता	दिव्यदृष्टि	ब्रह्मवेद

इस प्रकार अथर्ववेदका ज्ञान और दिव्यदृष्टिके साथ संबंध आता है। "अ-थर्व" शब्दका अर्थ "अ-गति, चंचलता-हीन, स्थितप्रज्ञ, स्थिरसुखा-सन-स्थित-योगी" ऐसा है। इस योगीको ही दिव्यदृष्टिकी प्राप्ति हो सकती है। इस प्रकार चक्षुशब्द अथर्ववेदका संकेत माना जा सकता है।

२ रा प्रमाण—अथर्ववेदको अंगिरो वेद अथवा अंगिरसां वेद ऐसाभी कहते हैं और चक्षुशब्दका अंगिरसोंके साथ संबंध अथर्ववेदमें बताया हैः—

यस्य शिरो वैश्वानरश्चक्षुरंगिरसोऽभवन् ॥
अंगानि यस्य यातवः स्कंभं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १८ ॥
यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरंगिरसोऽभवन् ॥
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ३४ ॥
अथर्व. १०।७॥

"जिसका सिर अग्नि और चक्षु अंगिरस हो गये; जिसके अंग

(यातवः) गमनशील प्राणी होगये हैं, उसका नाम स्कंभ है और (सः) वह (क-तमः) अत्यंत आनंदमय है॥ जिसके प्राण और अपान वायु हैं, और चक्षु अंगिरस हो गये हैं, दिशा जिसके ज्ञानके साधन हैं उस ज्येष्ठ ब्रह्मको नमस्कार है।"

इन मंत्रोंमें चक्षुका अंगिरसोंके साथ संबंध बताया है। इन दो मंत्रोंमें परमात्माका वर्णन है और उसके चक्षु अंगिरस हैं। अंगिरसोंका वेद अथर्ववेद प्रसिद्ध है। अर्थात् परमात्माका आंख अथर्ववेद है। अस्तु इस प्रकार चक्षुशब्दसे अथर्ववेदका बोध होता है।

३ रा प्रमाण—श्रवण शक्तिके साथ अथर्ववेदको शरण जाना है। श्रवणशक्तिका ज्ञानके साथ संबंध सनातन है। श्रुतिशब्दका "वेद अर्थात् ज्ञान" ऐसा अर्थ प्रसिद्ध है। विद्वानका नाम बहुश्रुत और अविद्वानके लिये अल्पश्रुत शब्द प्रयुक्त होते हैं। अर्थात् श्रवणशक्तिके साथ ज्ञानका संबंध निश्चित है। इस लिये कहा है कि "अपनी श्रवणशक्तिके साथ ब्रह्मवेदको शरण जाता हूं।"

"अंगि-रस्" शब्दका "अंगोंमें रहनेवाला रस" ऐसा अर्थ है। शरीरमें अंगप्रत्यंगोंमें एक प्रकारकी जीवनशक्ति रहती है उसका नाम अंगिरस है। इसी शक्तिद्वारा शरीरके व्याधी दूर होते हैं। इच्छाशक्तिसे इस जीवन-शक्तिको संचलित करनेसे अनेक व्याधि दूर किये जा सकते हैं। यह इच्छाशक्तिकी चिकित्सा अथर्ववेदमें शेंकडों स्थानों में कही है। इस लिये इस वेदको *आंगिरस-वेद कहते हैं। मनको स्थिर करनेकी विद्या इसमें है इसलिये इसको अ-थर्व वेद कहते है। "अ-थर्वा" शब्दका हि अर्थ "स्थिर" ऐसा है। इस प्रकार इस वेदका महत्व है।

अथर्व वेदका गुरुपरंपरासे श्रवण करनेके लिये कानोंको समर्पित करना है। गुरुपरंपरासे वेदके गुह्य आशयको सुनकर, योगादि साधन जानकर उसका अनुष्ठान करना, और मन एकाग्र करनेका अभ्यास करके, इच्छा-शक्तिको बढाकर, केवल इच्छामात्रसेहि दूसरोंके व्याधियोंको दूर करके

---

* अंगिरसः, अंग-रसः, अंगीय-रसः, अंगानां रसः (अंगोंके अंदर रहनेवाली जीवनशक्ति) Vitality, vital power.

परोपकार करना, श्रवणशक्तिको अथर्ववेदमें अर्पण करनेका तात्पर्य है। (१) वाणी (२) मन और (३) प्राणकी पवित्रताके पश्चात् यह (४) दिव्य दृष्टिकी प्राप्ति होती है, यह बात मंत्रोपदेशके क्रमसेहि जानी जासकती है, इसलिये इस क्रमके विषय में यहां विशेष विचार करनेकी आवश्यकता नहीं।

इच्छाशक्तिसे व्याधियां दूर होतीं हैं और इच्छाशक्तिके प्रयोग आंखोंकी वेधक-दृष्टिसे हि हो सकते हैं। चित्तकी स्थिरता और आंखोंमें वेधक-शक्तिके साथ एकहि स्थानपर बहुत देरतक दृष्टिकी टकटकी लगानेकी शक्ति जिसको साध्य हुई है, वही अपनी प्रबल इच्छाशक्तिसे दूसरोंको आराम पहुंचा सकता है। इस बातको देखनेसे पता लगेगा कि "चक्षु" शब्दसे हि यहां अथर्वाका उल्लेख क्यों किया है। अथर्ववेदमें कहे हुए दिव्य इच्छाशक्तिके प्रयोग चक्षुकी वेधक-दृष्टिसे हि साध्य हैं; इसलिये चक्षुशब्दही उस वेदका उपलक्षण माना है। अस्तु इस प्रकार इस मंत्रभागका विचार होगया। अब मंत्रके पंचम भागपर विचार करना है:—

(५) वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ॥

(वाक्-ओजः) वाणीका बल, (सह-ओजः) ऐक्यका बल और (प्राण+अपानौ) प्राणोंका बल (मयि) मेरे आत्मा में रहें। मेरे आत्मिक बलके साथ वाक्शक्ति, ऐक्यकी शक्ति और प्राणशक्ति ये तीन शक्तियां रहें॥

"ओजस्" शब्दके "बल, शक्ति, योग्यता, वीर्य, तेजस्विता" आदि अर्थ हैं। "ओज्" धातुका अर्थ "बलवान होना, तेजस्वी बनना, वीर्यवान रहना" आदि है। शस्त्रास्त्रोंका उपयोग करनेकी कुशलता ऐसा भी एक अर्थ ओजका है। "उब्ज-आर्जवे" इस धातूसे कई लोग ओजःशब्द बनाते हैं। इस अवस्थामें ओजका अर्थ "सरलता" भी होसकता है।

मनुष्यकी उन्नतिके लिये वाणीकी शक्ति, वक्तृत्वका तेज और सरल भाषण करनेकी योग्यता, चाहिजे। वक्तृत्वकी शक्तिसे सुज्ञ मनुष्य शत्रुओंको भी अपने मित्र बना सकता है। उत्तम वक्तृतासे मनुष्यकी योग्यता, तेजस्विता और सरलता प्रकट होती है। मनुष्यके पास जो वाचाशक्ति है

वहही एक विशेषता मनुष्यके पास है, जो किसी अन्य प्राणीके पास नहीं। मनुष्योंकी सब उन्नति उसकी वक्तृत्वशक्तिपर हि निर्भर है। यदि मनुष्योंमें वक्तृत्वशक्ति न होती, तो मनुष्य इतनी उन्नति न कर सकते। मनुष्यकी वाचाशक्तिकी इतनी योग्यता है।

मनुष्यप्राणी * मेलमिलाफसे रहनेवाला है। यदि मनुष्य मिलजुलकर नहीं रहेंगे तो उनका नाश निःसंदेह होगा। संगति, संमेलन, ऐक्य, एकता ये मनुष्यकी उन्नतिके साधन हैं और विरोध, झगडा, भिन्नता, लढाई ये मनुष्यके घातके साधन हैं। उन्नति करनेके लिये मनुष्योंको संगठन बनाना चाहिए। इसलिये ऋग्वेदमें कहा है:—

संगच्छध्वं संवदध्वं
सं वो मनांसि जानताम् ॥ ऋ. १०।१९१।२॥

"संगठन करो, संवाद करो और मन सुसंस्कारोंसे युक्त करो" यही उपदेश "वागोजः सहौजः" शब्दोंके द्वारा किया है। साथ रहनेसे, मिल-जुलकर रहनेसे जो बल पैदा होता है वही संगठनकी शक्ति है। मनुष्यकी शक्ति और उन्नतिका प्रमाण उनकी संगठन शक्तिके प्रमाणपर निर्भर है। देखीए:—

$$\frac{\text{प्रयत्न (ज्ञान+संस्कार+आनुवंशिक संस्कृति)}}{\text{संख्या+संगठन+निर्वैरभाव}} \times \text{आशावाद} = \text{अभ्युदय ।}$$

इससे पता लगेगा कि, संगठनका अभ्युदयके साथ कितना घनिष्ठ संबंध है। इस प्रकार संघशक्तिका महत्त्व जानकर अपनी उन्नतिके लिये मनुष्योंको अपनी संघशक्ति बनानी चाहिए।

"प्राणापानौ" शब्दसे प्राण-शक्तिका वर्णन है। प्राण शब्द जीवन-शक्तिका वाचक है और अपान शब्द दुःखहारक शक्तिका बोधक है। शरीरके

---

* निघण्टु-वैदिककोश-में "व्रात" शब्द मनुष्यवाचक नामों में (अ० २।३) दिया है। इस व्रात शब्दका अर्थ—Multitude, assemblage, troop, group, company, association, guild, five races of men; संघ बनाकर रहनेवाला।

अंदर दो व्यापार चलते रहते हैं, एक जीवनकी कला बढानी और दूसरा रोगबीजोंका नाश करना। ये दो शक्तियां शरीरमें बढानी चाहिए। परमात्माने शरीरके अंदर ये दोनों शक्तियां रखीं हैं। और शरीरका आरोग्य इन्हीके कारण रहता है। इन शक्तियोंका विकास करना मनुष्योंका कार्य है। पूर्वस्थानमें कही हुई इच्छाशक्ति से दूसरोंको आराम पहुंचानेके लिए अपनी प्राणशक्तिका सामर्थ्य बढाना चाहिए। प्राणशक्तिका सामर्थ्य बढानेसे अपनी नीरोगता भी स्थिर होती है। आरोग्य-संपन्न होनेसे सब पुरुषार्थ करनेकी सुगमता होती है, इस लिये प्राणापानकी शक्ति बढानी चाहिए।

"वाचाशक्ति, संघशक्ति और जीवनशक्ति मेरे आश्रयसे रहें" ऐसी प्रार्थना इस मंत्रमें है। "मयि" सप्तमी विभक्तिका एकवचन है। "अस्मत्" शब्द मूल है उसकी सप्तमी "मयि" होती है। "अस्-मत्" (अस्मत्) अर्थात् अस्ति-मत् (अथवा अस्तित्ववाला, हस्तिवाला) शब्दहि बताता है कि जिसका नाश नहीं होता, अथवा जो सद्रूप है, वह अस्मत् है। अस्मत् शब्दका प्रथमा विभक्तिका एकवचन "अहम्" होता है। "अहम्" (अ-हं) का अर्थ "अ-हन्यमान" अर्थात् जिसका हनन अथवा नाश नहीं होता है, जो अविनाशी है। 'अहं अस्मत्' ये शब्द "मैं" ऐसा अर्थ बतानेवाले हैं, और इन शब्दोंके अर्थ देखनेसे विदित हुआ कि, मेरा नाश नहीं होना है, अर्थात् मैं अविनाशी हूं। आत्माका अविनाशित्व "अहं; अस्-मत्" इन शब्दोंसेहि सिद्ध हुआ। मैं अविनाशी हूं यह विश्वास इन शब्दोंके अर्थ देखनेसे हि होता है। (In-dividual soul) अ-विभज्य आत्मा यही अर्थ "अ-हं" शब्द बता रहा है।

मैं जो अविनाशी आत्मा हूं, उस मेरे आधारसे वाक्शक्ति, संघशक्ति और प्राणशक्ति स्थिर रहे, यह भाव इस मंत्रका है। प्राण और संगठनके विषयमें बहुत कहा गया है; अब वाणीके विषय में वेदोंका आशय बताना है:—

वाक् त आप्यायताम्॥ यजु. वा. सं. ६।१५॥

"तेरी वाणीकी उन्नति हो।" वाचा-शक्तिकी उन्नति करनी चाहिए,

वक्तृता ओजस्विनी होनी चाहिए, वाणीके अंदर बल लाना चाहिए इत्यादि भाव यहां हैं। तथाः—

वाग्यज्ञेन कल्पन्ताम्॥ यजु. वा. सं. १८।२९॥;२२।३३॥

"अपनी वाणीको यज्ञमें समर्पित करो।" सत्कार-संगति-दानात्मक जो कर्म होता है उसको यज्ञ कहते हैं; ऐसे यज्ञमें अपनी वाणी अर्पण करनी चाहिए। तथाः—

इयं या परमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मसंशिता॥
येनैव ससृजे घोरं तेनैव शांतिरस्तु नः॥
अथर्व. १९।९।३॥

(या इयं) जो यह (परमे-स्थिनी) परम उच्च स्थानमें रहनेवाली (ब्रह्म-संशिता) ज्ञानसे तीक्ष्ण बनीहुई (वाग्-देवी) दिव्य वाणी है। (येन एव) जिससे (घोरं) सन्मान्यता और उच्चता (ससृजे) उत्पन्न होती है (तेन एव) उसीसे (नः) हम सबके अंदर (शांतिः अस्तु) शांति रहे।

यह वाणीका महत्त्व है। "घोर" शब्दके परस्पर विरोधी दो अर्थ हैं (१) परम उच्च (Sublime), सन्मान्य (Venerable) और (२) भयानक (frightful), भयंकर (Terrific)। ये दोनों यहां लिये जा सकते हैं। दोनों अर्थ लेनेसे निम्न प्रकार दो भिन्न अर्थ प्रतीत होंगे। (१)जिससे सन्मान बढता है उसीसे हम सबके अंदर शांति बनी रहे; तथा (२) जिससे भयानक अवस्था उत्पन्न होती है, उससे भी हम सबके अंदर शांति स्थिर रहे। वाणीसे झगडे भी उत्पन्न होते हैं और सुलाह भी होती है; वाणीसे शत्रुभी बनते हैं, और मित्रभी बनते हैं। ये दोनों भाव उक्त दो अर्थ देखनेसे व्यक्त होते हैं। वाणीका महत्व निम्न मंत्रमें वर्णन किया हैः—

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः॥
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः॥ ऋ. १।१३।९॥;५।५।८॥
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तामिडा सरस्वती
मही भारती गृणाना॥ अथर्व० ५।२७।९॥

तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्त्विडा सरस्वती
भारती ॥ मही गृणाना ॥ यजु. वा. सं. २७।१९॥

(इडा) वाणी, (सरस्वती) विद्या और (मही भारती) भरणकर्त्री भूमी ये (तिस्रः देवीः) तीन देवियां (मयो-भुवः) उत्साह उत्पन्न करनेवाली हैं । ये तीनों (अ-स्रिधः) न भूलतीं हुई (बर्हिः) मनमें (सीदन्तु) बैठें ।

भारती मही (Mother country) मातृभूमी, सरस्वती (Mother culture) मातृविद्या अर्थात् मातृसंस्कृति और इडा (Mother tongue) मातृभाषा ये तीन उपास्य देवताएं हैं । मातृभाषा, मातृसंस्कृति और मातृभूमिके विषयमें सबके मनमें प्रेम और भक्ति सदा रहनी चाहिए। इडाका संबंध "वागोजः" अर्थात् वाणीके बलके साथ है। सरस्वतीका संबंध "सह-ओजः" से है, क्योंकि जातिके (संघशक्तिके) साथ मातृ-संस्कृति परंपरासे (वंशपरंपरा और गुरुपरंपरासे) आती है । "सरस्-वती" शब्दका मूल अर्थ "प्रवाह-वाली" ऐसा है । मातृसंस्कृति जनताके प्रवाहके साथ साथ आती है । "सह-ओज" शब्दका अर्थभी "साथ साथ आया हुआ ओज" ऐसा है । मही भारतीका संबंध "प्राण" के साथ है, क्यौंकि प्राणोंसेहि मातृभूमीकी पूजा और मातृभूमीकी उन्नति करनी होती है। मातृभूमीके चरणोंपर अपने प्राणोंका अर्पण करनाही मातृभूमीकी पूजा और भक्ति है । ये तीनों संबंध देखने योग्य हैं ।

पूर्वोक्त अस्मत् (अहं-मैं) के अन्य रूपोंका अर्थ यहां देखने योग्य है:-

(१) अस्मत्-(अस्-मत्)=अस्तित्वसे युक्त, सत्तावाला, सत् ।

(२) अहम्-(अ-हं, अहननीय, अहातव्य)=त्यागनेके लिये अयोग्य, जिसका त्याग नहीं हो सकता, जो दूर नहीं हो सकता । मैं ।

(३) आवाम्-(आ-अव्)=सब प्रकारसे रक्षण करने योग्य ।

(४) वयम्-(वय-गतौ)=गतिमान, हलचल करनेवाले । प्रयत्नशील ।

(५) मां, मा—(मा—माने, मान्-पूजायां)=सबको मापने मिनने-वाला, पूजा करने योग्य।

(६) नौ—(नु-स्तुतौ)=स्तुति करने योग्य ।

(७) नः—(नसते—उपगच्छति)=पास जाने योग्य, प्राप्तव्य, उपास्य, ज्ञेय ।

(८) मह्यम्—(मह—पूजायां)=सत्कार करने योग्य, पूज्य ।

(९) मे—(मे-प्रणिदाने)=व्यवहारके लिये योग्य, सब व्यवहारका साधन, (प्र) विशेष प्रकारसे (निदान) शुद्ध, ढूंढने योग्य, अंतिम प्राप्तव्य ।

(१०) मत्—(मद्-हर्षे)=आनंदका केन्द्र । हर्षका हेतु, स्थान ।

(११) मम—(ममत्तु-हर्षयतु)= ,, ,,

(१२) मयि—(मय गतौ)=गतिमान, हलचल करनेवाला । प्रयत्नशील ।

अस्मत् शब्दके अन्यरूप "अस्मत्, आवां, नौ, नः" के समानहि है । जैसा -आवाभ्यां, अस्मभ्यं आदि ।

इन अर्थोंको देखनेसे अस्मत् शब्दसे व्यक्त होनेवाला "मैं" अर्थात् आत्मा "अविनाशी, गतिमान, प्रयत्नशील, पूजनीय, उपास्य, ज्ञेय, प्राप्तव्य, शुद्ध, हर्षका स्थान" है, ऐसा बोध होता है । मैं कैसा हूं, इसका विचार "मैं" वाचक अस्मत् शब्दके सातों विभक्तियोंके रूपोंका विचार करनेसे हो सकता है ।

यहां पाठकोंको इतनी बात अवश्य ध्यानमें धरनी चाहिए कि, अस्मद् आदि शब्दोंको निपात समझकर उनका अर्थ देखनेकी पद्धति संस्कृत व्याकरणके अनुसार ग्राह्य नहीं । संस्कृतके व्याकरण इन शब्दोंको यौगिक नहीं मानते और न इनके अर्थ करनेकी आज्ञा देते हैं । परंतु मेरे विचारमें प्रत्येक शब्द सहेतुक और अर्थवाला होना चाहिए । विशेष हेतुसे शब्दकी उत्पत्ति हुई है । शब्दोंका प्रयोग अर्थके अनुसार हि प्रारंभ हुआ होगा ।

शब्दोंको निपात मानकर उनका कोई मूल अर्थ नहीं, परंतु उनका रूढीका अर्थ कुछ है, ऐसा माननेसे, "मैं" के लियेहि "अस्मत् (अस्-मत्)" शब्द क्यों प्रयुक्त हुआ ? इसका कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता । "अस्-मत्" शब्द सार्थ है, ऐसा मानकर उसका अर्थ जाननेसे उक्त प्रश्नका उत्तर दिया जा सकता है । "चूं किं मेरा अस्तित्व हमेशा रहनेवाला है, अन्य पदार्थ रहें या न रहें मेरा अस्तित्व सदासे है और सदा रहेगा, इस-

लिये मैं अस्तित्ववाला-अस्मित्-हूं; इसलिये मेरा नाम अस्मित् अथवा * परोक्ष-प्रियताकेकारण अस्-मत् है।" इस प्रकार मूल अर्थकी खोज करनेसे प्रत्येक पदार्थका नाम क्यौं हुआ इसका परिज्ञान हो सकता है।

कई शताब्दियोंसे पहिले श्री० माधवाचार्यने ईशोपनिषद्भाष्य लिखनेके समय, ईशोपनिषद्के १६ वे मंत्रके भाष्यमें "अहं" शब्दका "अ-हं" अर्थात् "अ-हेय" ऐसा अर्थ करके सूचित किया है कि ये शब्दभी यौगिक हैं। इस सूचनाकी प्रेरणासे जब मैनें अस्मत् शब्दके सातों विभक्तियों के रूप देखे, तो उनके उक्त अर्थ प्रतीत हुए। इनके अर्थ येही हैं इसकेलिये मेरे पास कोई प्रमाण नहीं; जो कल्पना श्री० माधवाचार्यके अर्थको देख-नेसे मनमें उत्पन्न हुई वह यहां लिखी है, इसका अधिक विचार मेरेसे अधिक विद्वानोंको करना चाहिए। तबतक साधारणपाठक इसको परि-पूर्ण न समझें।

पूर्वोक्त संबंध बतानेके लिये उन सब शब्दोंको निम्नकोष्टमें रखता हूं:—

ऋग्वेद	यजुर्वेद	सामवेद	अथर्ववेद
सूक्त	अध्याय	साम	ब्रह्म
सुभाषण	अध्ययन	गायन	आत्मज्ञान
स्तुति-(प्रशंसा)	यज्ञ-(कर्म)	उपासना-(भक्ति)	ब्रह्म-(ज्ञान)
वाक्	मनः	प्राणः	श्रोत्रं
वाक्शुद्धि	मनःशुद्धि	प्राणायाम	वृत्तिनिरोध
उत्तमविचार	गुरुसेवा	शांति	दिव्यदृष्टि
अग्नि	वायु	सूर्य	अंगि-रस
उष्णता (Heat)	गति (Motion)	तेज (Life-light)	वीर्य (Vitality, force)
संवाद	संगति	संस्कार	संज्ञान

* (परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः।) बृहदा. उ. ४।२।२॥; शतप. ब्रा. १४।५।१।२॥ देव गुह्यरीतीसे ज्ञान कहते है स्पष्ट रीतीसे नहीं। देव गुह्यरी-तीको पसंद करते हैं, स्पष्ट रीतीका द्वेष करते हैं।

वाग्-ओजः	सह-ओजः	प्राण-ओजः	आत्म-ओजः
Power of speech	Power of unity	Power of life-breath	Power of soul
इडा	सरस्वती	भारती मही	आत्मशक्ति
मातृभाषा	मातृसंस्कृति	मातृभूमि	अविनाश
Mother-tongue	Mother-culture	Mother-land	In-dividuality
वक्तृत्वशक्ति	संघशक्ति	जीवनशक्ति	ज्ञानशक्ति

वेदत्रयी	वेदान्त
साधक—अवस्था	सिद्ध—अवस्था
साधनोंका बल	सिद्धियोंका बल

इस प्रकार परस्पर संबंध प्रतीत होता है। यह देखकर और इसका विचार करके पाठक और भी बोध प्राप्त कर सकते हैं। यहां पहिले मंत्रका विवरण समाप्त हुआ। अब द्वितीय मंत्रका विचार करना है।

मंत्र २

(२) आत्म-परीक्षण और आत्म-सुधार।

"जो मेरे चक्षु हृदय और मन में छिद्र अर्थात् दोष हों वे बृहस्पति की कृपासे दूर होकर मेरे सब इंद्रिय निर्दोष हों। और जगत् का पालक ईश्वर हम सबका कल्याण करे।" यह दूसरे मंत्रका आशय है।

इस मंत्रमें तीन अवस्थाएं वर्णन कीं हैं (१) अपने दोषोंको जानना, (२) ज्ञानियोंकी सहायतासे अपने दोषोंको दूर करना और शुद्ध होना, (३) और जगदीशकी कृपासे कल्याणको प्राप्त करना।

कई लोक ऐसे होते हैं कि, जिनको अपने दोषोंका और अपनी त्रुटियोंका ख्याल ही नहीं होता, और वे समझते हैं कि, हम बडे अच्छे हैं।

ऐसे लोकोंकी सुधारणा और उन्नति नहीं हो सकती। जो लोग अपनी परीक्षा प्रतिदिन स्वयं करते रहते हैं, और जिनको अपने दोषोंकी जागृति रहती है उनका सुधार हो सकता है। अपनी न्यूनताओंको जनाना हि उन्नतिकी पहिली सीढीपर चढना है।

जब अपने दोषोंका ज्ञान होता है, और निर्दोष स्थितिकी उच्च अवस्थाकी कल्पना मनमें होती है, तब ज्ञानीके पास जाना आवश्यक होता है। बृहस्पति देवगुरुको कहते हैं। विद्वानोंको देव कहते हैं, इनका भी जो गुरु अर्थात् महोपदेशक वह देवगुरु अथवा बृहस्पति होता है। परमेश्वर गुरुओंका गुरु, ज्ञानियोंका ज्ञानी, और उपदेशकोंकाभी उपदेशक है। इसलिये मुख्यतया उसीको बृहस्पति कहते हैं और गौणवृत्तिसे सब उपदेशकोंको बृहस्पति कहा जाता है। परमेश्वरकी अंतःप्रेरणा और ज्ञानियोंका बाहेरसे उपदेश होनेसे दोष दूर होने लगते हैं। और दोष दूर होनेके पश्चात् परमेश्वरसे आनंद प्राप्त होने लगता है।

इस मंत्रमें चक्षु शब्द बाह्य इंद्रियोंका दर्शक है। पांच ज्ञानइंद्रियां और पांच कर्म-इंद्रियां मिलकर दस बाह्यइंद्रियां हैं। बुद्धि, चित्त, मन और अहंकार ये चार तर्कविषयक और हृदय भक्तिविषयक मिलकर पांच इंद्रियां अंदर हैं। इनके दोषोंके अतिरिक्त शारीरिक दोष, कुटुंबसंबंधी दोष, समाज—जाती—राष्ट्रसंबंधी दोष होते हैं। इन सब दोषोंको दूर करना चाहिए। पितृपैतामहिक क्षेत्रज दोषभी प्रबल होते हैं। इन सब दोषोंको दूर करना परम पुरुषार्थसे साध्य है। बाहेरके दोष शीघ्र दूर हो सकते हैं, परंतु हृदयके और मनके दोष दूर होना अत्यंत कठीन है। बडे परिश्रमी और अभ्यासी साधकोंके मनमें भी कुविचार उत्पन्न हुवा करते हैं। इसलिये इस मंत्रमें हृदय और मनका उल्लेख करके इनकी ओर विशेष ध्यान देनेकी सूचना की है। बाह्य दशइंद्रियोंमेंसे एकहि चक्षु इंद्रियका उल्लेख मंत्रमें आया है। अंदरके पांच केंद्रोंमेसे दो इंद्रियोंका उल्लेख है।

१ हृदय .... १ हृदय ... भक्ति ... १/१ = २०/२० पूर्ण दृष्टि

४ { बुद्धि, चित्त
मन, अहंकार } १ मन ... चिंतन ... १/४ = ५/२० चतुर्थांश दृष्टि

१० { पंच ज्ञानेंद्रिय / पंच कर्मेंद्रिय } १ चक्षु ... ज्ञान/कर्म ... $\frac{1}{10}=\frac{2}{20}$ दशांश दृष्टि

बाह्य इंद्रियां सर्वथा मनके आधीन होनेसे और मनकी शुद्धि-अशुद्धि-पर उनकी भली-बुरी अवस्था निर्भर होनेसे, बाह्य इंद्रियोंपर निरीक्षणका दसवां हिस्सा उनकी परीक्षा करनेके लिये पर्याप्त है । मनबुद्धि आदीपर सब बाह्य इंद्रियां निर्भर हैं, इस कारण उनकी परीक्षा करनेके लिये बाह्य इंद्रियोंकी अपेक्षा अढाई गुणा अधिक प्रयत्नकी आवश्यकता है । परंतु जब हृदयके अंदर पूर्ण भक्ति होती है तब न मन चंचल होता है और न बाह्य इंद्रियां भटकने लगतीं हैं । इस लिये अपना सब सामर्थ्य हृदयशुद्धिके लिये लगाना चाहिए । हृदयशुद्धिके लिये बाह्य इंद्रियशुद्धिकी अपेक्षा दस-गुणा और मनकी शुद्धिकी अपेक्षा चारगुणा अधिक प्रयत्न होनेकी आव-श्यकता है ।

शिक्षाप्रणाली कैसी होना चाहिए इसका विचार इस मंत्रसे निश्चित हो सकता है । शिक्षाप्रणालीमें बाह्य इंद्रियोंको ठीक करनेकी ओर जितना ध्यान देना चाहिए, उससे तीनगुणा ध्यान मनको ठीक करनेकी ओर और दसगुणा ध्यान हृदयको ठीक करनेकी ओर देना चाहिए । इसका यह आशय नहीं कि, इंद्रियोंको कमजोर रखना चाहिए, परंतु यहांका आशय इतनाही है कि, (१) शरीर और इंद्रियोंको अवश्य अत्यंत बलवान करना चाहिए । (२) उनसे भी मन बलवान होना चाहिए क्योंकि शरीर और इंद्रियोंका उसीने संयम करना है । (३) और इन सबसे हृदय बलवान, शुद्ध और भक्तिसे परिपूर्ण होना चाहिए; क्योंकि हृदयकी उच्चतापर अन्य सब मन आदि साधनोंकी उत्तमता निर्भर है । अस्तु । इस मंत्रके सदृश एक मंत्र अथर्ववेदमें है:—

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः
सरस्वती मन्युमन्तं जगाम ॥
विश्वैस्तद्देवैः सह संविदानः
सं दधातु बृहस्पतिः ॥ अथ. १९।४०।१॥

"(सरस्वती) विद्या संस्कृति ❀ (मन्युमन्तं) तेजस्वी दृढ अभ्यासी मनुष्यके पासहि (जगाम) जाती है। इस लिये (यत्) जो (मे मनसः) मेरे मनका और (यत् च मे वाचः) जो मेरे वाणीका (छिद्रं) दोष अथवा न्यूनता हो, (तत्) उस दोषको अथवा उस छिद्रको (विश्वैः देवैः) सब दिव्यगुणोंके (सह संविदानः) साथ रहनेवाला (बृहस्पतिः) ज्ञानका स्वामी (सं दधातु) ठीक करे।"

विद्या और उन्नति तेजस्वी, हिम्मतवाले, धैर्यशाली, बलवान, उग्र, प्रतापी, प्रबल, तनमनधनसे निश्चयपूर्वक कार्य करनेवाले, दृढ अभ्यासी वीर्यवान पुरुषोंके पास जाकर निवास करती है। अलसी, डरपोक, निस्तेज, निर्बल, चंचल, निर्वीर्य और पुरुषार्थहीन पुरुषोंके पास कभी विद्या और उन्नति नहीं रहती। यहि वाणीके और मन आदि इंद्रियोंके दोष हैं। इन दोषोंको दूर करना और मन आदि इंद्रियोंको शुद्ध बनाकर उनमें तेजस्विता आदि दिव्य गुणोंकी स्थापना करनी चाहिए, जिससे विद्या और उन्नति पास आकर रहेगी। मन आदि इंद्रियोंके दोषोंको दूर करनेके लिये सब देवताओंके साथ रहनेवाले बृहस्पतिके (अर्थात् सब दिव्य गुणोंके साथ रहनेवाले ज्ञानीके) पास जाना चाहिए। इसीलिये उपनिषद्में कहा है:—

उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान्
निबोधत ॥ कठोपनि० ३।१४॥

"उठो, जागो और श्रेष्ठोंके पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो।" तथाः—

उत्तिष्ठताव पश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम्।
यदि श्रातं जुहोतन यद्यश्रातं ममत्तन ॥
–अथर्व. ७।७२।१॥

(उत्तिष्ठत) उठीए, (अव–पश्यत) चारों ओर देखीए, और (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्यवानका (ऋत्वियं) समयके अनुकूल (भागं) भाग,

१ मन्युमान्=spirited (तेजस्वी, हिम्मतवाला, धीर), energetic (बलवान) vehement (उग्र, प्रबल, तनमनसे कार्य करनेवाला), ardent (मेहनती, दृढ अभ्यासी) मन् to think.

हिस्सा जानीए । (यदि श्रातं) यदि परिपक्व होगया हो तो हि (जुहोतन) अर्पण करो, परंतु (यदि अ-श्रातं) यदि परिपक्व, तैयार न हुआ हो तो (ममत्तन) आनंदसे ठहरो ।

उठो, चारों ओर देखो और जानो कि ऐश्वर्यवानोंका कर्तव्यका भाग कितना है । जो विचार या पदार्थ तुम्हारे पास तैयार हों, वेही अर्पण करो, यदि ठीक न पका हो तो उदास न हो, शांतिके साथ रहो, और थोडी देर इंतजार करो । परोपकारके कार्यमें अपने आपको अर्पण करनेसे पूर्व देखना चाहिए कि मेरा शरीर, मेरा मन और मेरी इंद्रियां परिपक्व होगयीं है या नहीं । योग्य पुरुषोंकी सेवा हि जनताको लाभ पहुंचानेवाली होती है । और देखोः—

अश्मन्वतीरीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत
प्रतरता सखायः ॥ अत्रा जहाम
ये असन्नशेवाः शिवान् वयमुत्तरेमा-
ऽभि वाजान् ॥ ऋ. १०।५३।८॥

"हे (सखायः) भाईयो ! यह (अश्मन्वती) पत्थरोंसे भरी हुई नदी (ईयते) जोरसे चल रही है । (सं रभध्वं) एक दूसरेको सख्त पकडो और (उत्तिष्ठत) उठो, सिद्ध होकर चलो और (प्र-तरत) जोरसे तैरो । (ये) जो (अ-सेवाः) सेवन करने अयोग्य पदार्थ (असन्) हैं उनको (अत्र जहाम) यहां ही फेंकते हैं और (वयं) हम सब जब (उत्तरेम) पैल तीरपर उतरेंगे तब (शिवान् वाजान्) कल्याणकारक अन्नों और बलोंको (अभि) सब प्रकारसे प्राप्त करेंगे ॥

यह संसारकी नदी दुःखों और आपत्तियोंके पत्थरोंसे भरी है और इसका वेगभी बहुत है । इसमेंसें अकेला अकेला पार नहीं हो सकता । इससे पार होनेके लिये सबको मिलजुलकर एक दूसरोंको अच्छी प्रकार पकडना चाहिए ताकि कोई भी न फिसले । और सबको एकही समय तैयार होकर जोरसे पार जानेका महान प्रयत्न करना चाहिए । जिनकी सचमुच आवश्यकता नहीं ऐसे बेजरूरी पदार्थोंका मोह छोडना चाहिए, क्यौंकि उनके बोझसे ही आदमी डूब सकते हैं । यदि हम पार होंगे तो

निश्चयसे पैलतीरकी उत्तम भूमीके रसभरे फल हमें मिलेंगे, उस समय इन खुष्क और रूखी चीजोंकी हमें कोई आवश्यकता नहीं रहेंगी।

अपने मानस सरोवरसे चलनेवाली इंद्रियव्यापाररूपी नदीमें विषयोंके पत्थर भरे पडे हैं। पार होना बडा मुष्किल है। जब बडे जोषके साथ बडा प्रयत्न किया जाय तभी पार होना संभव है। विश्वामित्रके समान धैर्य-धर पुरुषार्थीकी किश्तीभी कामके पत्थर पर टकराकर जहां छिन्नभिन्न होती है, वहां इस नदीसे पार होना कितना कठिन है इसकी कल्पना हो सकती है। उक्त मंत्रके साथ निम्न अथर्ववेदके मंत्र देखने चाहिए:—

> अश्मन्वतीरीयते संरभध्वं वीरयध्वं प्रतरता
> सखायः॥ अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा
> अनमीवानुत्तरेमाऽभि वाजान्॥ २६॥
> उत्तिष्ठता प्रतरता सखायोऽश्मन्वती
> नदी स्यन्दत इयम्॥ अत्रा जहीत
> ये असन्नशिवाः शिवान् त्स्योनानुत्तरेमा-
> ऽभि वाजान्॥ २७॥ अथर्व. १२।२॥

इस मंत्रमें "वीरयध्वं" (अर्थात् बडा पुरुषार्थ करो, शौर्यवीर्यके साथ बडा प्रयत्न करो) ऐसा अधिक उपदेश है। ऋग्वेदके मंत्रमें जहां "अ-शेवा" (असेवनीय) शब्द है वहां अथर्ववेदमें "दुरेवाः" (दुःखदायी, दुःखपरिणामी) और "अ-शिवाः" (अ-शुभ) ये दो शब्द हैं। तथा ऋग्वेदके "शिवान्" (शुभ) शब्दके स्थानपर अथर्ववेदमें "अन्-अमी-वान्" (रोगरहित) और "स्योनान्" (अनुकूल, हितपरिणामी) ऐसे शब्द है।

	ऋग्वेद	अथर्ववेद
१	अ-शेवाः...............	दुरेवाः अ-शिवाः
२	शिवान्...............	अन्-अमीवान् स्योनान्

इस प्रकार वेदके पाठभेदोंकी तुलना करनेसे अर्थकी स्पष्टता होती है। अस्तु। और देखीए:—

उत्तिष्ठत मा स्वपत ॥ तै. आ. १।२७।२॥

"उठो, मत सोओ।" अपनी उन्नति करनेमें सदैव उठना चाहिए, सोते रहनेसे कार्य नहीं चलेगा। सोते रहनेसे चंचल मन किस बुरी अवस्थामें ले जायगा, इस बातका पता नही लगेगा। तथाः—

उत्तिष्ठन् विन्दते श्रियम् ॥
—शांखायन श्रौ. सू. १५।१९॥

"जो उठता है वही शोभाको प्राप्त होता है।" जो उठकर अपनी उन्नति करता है वही श्रेष्ठ पदवी प्राप्त कर सकता है। अपनी उन्नतिके कार्य उठकर जागते हुए करने चाहिए ऐसा सब वेदशास्त्रोंका सिद्धांत है। आत्मपरीक्षा और आत्मसुधारके लिये और विशेषकर अपने दोषोंको दूर करनेके लिये जागृतिके साथ सतत बडा प्रयत्न करना चाहिए।

इस मंत्रमें दोषोंको दूर करनेके उपदेशके समय "मे" (अर्थात् मेरे एकका) ऐसा एकवचनी प्रयोग किया है। परंतु शांतिकी अथवा सुखकी प्राप्ति होनेके समयके उपदेशमें "नः" (अर्थात् हम सबका) ऐसा अनेकवचनी प्रयोग किया है। इससे यह बोध लेना है कि हरएक व्यक्तिको अपने दोष दूर करने चाहिए, अपने दोषोंके लिये समाजको जिम्मेवार समझना नही। परंतु जब शांतिकी स्थापना होगी उस समय जैसा शांतिका सुख पुरुषार्थ करनेवालों को मिलता है, वैसाही पुरुषार्थहीनको प्राप्त होता है।

जैसा क्षत्रिय शूर पुरुष शांतिस्थापन करनेकेलिये अथवा धर्मकी रक्षाकेलिये घोर युद्ध करते हैं। परंतु जब शांति प्रस्थापित होती है, उस समय केवल उन शूरोंको हि लाभ नहीं पहुंचता; परंतु सब मनुष्योंको लाभ होता है। हरएक व्यक्तिको अपने दोष दूर करके अपनी उन्नति करनी चाहिए और पश्चात् सब मनुष्योंके हितके लिये अपने आपको अर्पण करना चाहिए। व्यक्ति और समाजका यह संबंध देखने योग्य है। अस्तु इसप्रकार द्वितीय मंत्रका विवरण समाप्त हुआ। अब तीसरा मंत्र देखना है:—

मंत्र ३

(३) उपासना ।

(१) भूः । भुवः । स्वः ॥

"भू=सत्तायाम् ।" भूः का अर्थ "सत्ता, अस्तित्व, हस्ति, सत्" ऐसा है । सत्-चित्-आनंद में से पहिले "सत्" शब्दका अर्थ यहांका भूः शब्द बता रहा है ।

"भुवः—अवकल्पने, मिश्रीकरणे, चिन्तन इत्यन्ये ।" भुव धातूका अर्थ "कल्पना करना, मिश्रण करना और चिन्तन करना" है । सत्-चित्-आनंदमें चित् शब्दका अर्थ यहां का भुवः शब्द बता रहा है । क्यौं कि चिंतन करना हि इसका धात्वर्थ है ।

"स्वः" शब्द "स्वर्, सु-वर्, सु-वर्ग, स्वर्ग" इन शब्दोंका निकट संबंधी है । "सुष्ठु अर्ज्यते इति स्वर्गः ।" उत्तमता जिसमें प्राप्त की जाती है वह स्वर्ग है । इसीलिये उसको सु-वर्ग अर्थात् उत्तमताकी श्रेणी, उत्तम दर्जा, उत्तम श्रेष्ठ अवस्था कहते हैं । "स्वर्" शब्दका "आत्म-प्रकाश" ऐसा अर्थ होता है । अपनी प्रकाशमय अवस्था यह शब्द बता रहा है । इस कारण सत्-चित्-आनंद में से आनंद शब्दके साथ इसका संबंध जोडा जा सकता है । "स्वर्" धातुका अर्थ "प्रकाशित होना" है । इससे इसका अर्थ प्रकाश अथवा प्रकाशमय अवस्था होता है । तात्पर्य आनंद शब्दका भाव इस शब्दसे टपक रहा है ।

भूः ।	भुवः ।	स्वः ॥
सत्ता ।	चिंतनम् ।	प्रकाशः ॥
सत् ।	चित् ।	आनंदः ॥
प्राणः ।	अपानः ।	व्यानः ॥
जीवन ।	दुष्टता-नाश ।	शांति ॥
प्रयत्न ।	संगति ।	समता ॥

ये तीनों शब्द जीवनके आधारभूत और उन्नतीके सारभूत तीन तत्त्वोंको

प्रकाशित कर रहे हैं। (१) अपना अस्तित्व रखनेकेलिये प्रयत्न होना चाहिए। आत्मिक दृष्टीसे अस्तित्व सदासेहि है। परंतु जातीय, समाजीय, राजकीय आदि अस्तित्व पुरुषार्थसे रखना होता है। (२) अपना अस्तित्व रखनेकेलिये ज्ञान और ऐक्य की आवश्यकता है। ज्ञान और ऐक्यके अभावमें जातीय अस्तित्व रखना असंभव है। (३) समता और शांतिके विना ज्ञान और ऐक्य प्राप्त नहीं हो सकता। समता और शांतिके विना आनंदभी मिलता नही। आनंदहि साध्य है जो अपनी सत्ता और अपने ज्ञानसे अनुभव करना होता है।

उक्त तीन भाव क्रमसे सत-चित्-आनंद अथवा भूः-भुवः-स्वः से जानने है। ये तीन भाव मनुष्योंके संस्कारों पर बडे प्रभाव डालनेवाले हैं, इसलिये इनको कभी भूलना नहीं। जिन सात व्याहृतियोंमें से ये तीन व्याहृतियां यहां लीं है उनका अर्थ नीचे दिया हैः—

सप्तव्याहृति	अर्थ	गायत्रीके पदोंका व्याहृतिके साथ संबंध	गायत्रीके पदोंका अर्थ.
१ भूः	सत्ता (अस्तित्वं)	तत्	(तत्) प्रत्यक्ष जो है।
२ भुवः	चिंतनं (ज्ञानं)	धियः	(धीः) बुद्धि और कर्म।
३ स्वः	प्रकाशः (आनंदः)	देवस्य	(देवः) प्रकाशक, ज्ञानी।
४ महः	महत्वं	वरेण्यं	(वरेण्यं) श्रेष्ठ, उत्कृष्ट।
५ जनः	उत्पादक शक्तिः	सवितुः	(सवितृ) प्रसविता, उत्पादक।
६ तपः	तेजः (अंधकारनाशः)	भर्गः	(भर्गः) अज्ञाननाशक तेज।
७ सत्यं	सत्यं	तत्	(तत्) जिसका अनुभव होता है।

ओंकार व्याहृति आदियोंके ऋषिदेवता निम्नप्रकार हैंः—

मंत्र	ऋषि	देवता	छंद
ॐ / ओ३म्	ब्रह्मा	अग्निः	गायत्री
भूः	गौतमः	,,	,,

भुवः	भरद्वाजः	वायुः	उष्णिक्
स्वः	विश्वामित्रः	आदित्यः	अनुष्टुप्
महः	जमदग्निः	बृहस्पतिः	बृहती
जनः	वसिष्ठः	वरुणः	पंक्ति
तपः	कश्यपः	इन्द्रः	त्रिष्टुप्
सत्यं	अत्रिः	विश्वेदेवाः	जगती
तत्सवितु० गायत्री मंत्र	विश्वामित्रः	सविता	गायत्री

इस प्रकार इनका परस्पर संबंध है । "तत्" शब्द "तनू-विस्तारे, श्रद्धोपकरणयोः ।" (फैलना, विस्तृत होना, विश्वास करना, सहाय करना) इस धातुसे बनता है इसलिये इसका अर्थ "व्यापक, श्रद्धा रखने योग्य, सहायक" ऐसा है । जिसका अंगुलीनिर्देशसे बोध किया जाता है उस प्रत्यक्ष पदार्थको "तत्" (वह) शब्दसे बताते हैं । योगियोंको, भक्तों को और ज्ञानियोंको परमेश्वर उतना प्रत्यक्ष (साक्षात्) होता है, कि जितना साधारण मनुष्योंको सृष्टिका घनपदार्थ होता है । इसलिये परमेश्वरके लिये "तत्" शब्दका प्रयोग अनेक स्थानोंपर आया है । इन शब्दोंके अर्थ अगले मंत्रमें देखने योग्य हैं:—

(२) तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

(सवितुः) जगदुत्पादक (देवस्य) ईश्वरके (तत् वरेण्यं भर्गः) उस श्रेष्ठका तेजका (धीमहि) हम सब ध्यान करते हैं कि (यः) जो (नः) हम सबके (धियः) बुद्धियोंको (प्र-चोदयात्) प्रेरणा करता है ।

शब्दोंके विशेष अर्थ:—

(१) सवितुः=(सविता–प्रसविता.)="सु=प्रसवैश्वर्ययोः" (प्रसव और ऐश्वर्य) इस धातूसे सविता शब्द बना है । इसलिये उसका अर्थ उत्पन्न करनेवाला और स्वामी होनेवाला है । किसी चीजको उत्पन्न करना और उसका स्वामी बनना ये दोनों भाव परमेश्वरके विषयमें हि घट सकते हैं ।

(२) देवस्य=प्रकाशक, दाता, ज्ञानी, विद्वान्, आनंदरूप, सहायक, इत्यादि इसके अर्थ प्रसिद्ध हैं ।

(३) भर्गः—"भृज्, भ्रस्ज्" इन धातुओंसे यह शब्द बनता है । तपाना और पकाना ऐसा इनका क्रमशः अर्थ है । तपाकर दोषोंको दूर करना और परिपक्व बनाना ये कार्य इससे प्रतीत होते हैं ।

(४) धियः—बुद्धि और कर्म, ज्ञान और यज्ञ, विचार और आचार । जिससे धारणा होती है वह धीः है ।

इन अर्थोंका विचार करके स्वाध्यायशील पाठक इस गायत्री मंत्रसे बहुत बोध ले सकते हैं क्योंकि यह मंत्र "गाय-त्री अर्थात् गानेवालेका रक्षण करनेवाला" है । अस्तु । इस मंत्रके साथ तुलना करनेके लिये निम्न मंत्र देखने योग्य हैं:—

त्वे इन्द्राऽप्यभूम विप्रा धियं वनेम ऋतया
सपन्तः ॥ अवस्यवो धीमहि प्रशस्तिं सद्यस्ते
रायो दावने स्याम ॥ ऋ. २।११।१२॥

(१) हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर ! हम सब (वि-प्राः) ज्ञानी लोग (अपि ते अभूम) तेरेहि होकर रहें । (२) (ऋतया सपन्तः) सदाचरणके साथ परस्पर प्रेम करते हुए (धियं वनेम) बुद्धिको प्राप्त करें। (३) (अवस्यवः) परस्पर सहायता करनेवाले हम सब (ते प्रशस्तिं) तेरी प्रशंसाका (धीमहि) चिंतन करते हैं । (४) (सद्यः) इसी समय (दावने) दानके लिये (रायः) धन देनेवाले (स्याम) हम सब होवें।

इस मंत्रमें चार उपदेश दिये है । (१) ईश्वरके भक्त बनकर रहें; (२) सदाचरण और प्रेम करते हुए उत्तम बुद्धि प्राप्त करे; (३) परस्पर सहाय करते हुए ईश्वरके गुणोंका ध्यान करें और (४) धनोंको दानमें अर्पण करें। इन चार उपदेशोंको उक्त गायत्री मंत्रके साथ देखना चाहिए । गायत्री मंत्रमें कहीहुई बुद्धीका महत्व गोपथमें कहा है:—

धिया धीरो रक्षतु धर्ममेतम् ॥

—गोपथ. ब्रा. १।५।२४॥

"धैर्यशाली पुरुषको उचित है कि वह इस धर्मकी बुद्धिद्वारा रक्षा करे।" बुद्धिके विषयमें अथर्ववेद कहता है:—

स्तुता मया वरदा देवमाता प्रचोदयन्ती
पावमानी द्विजानाम्॥ आयुः प्राणं प्रजां
पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्त्वा
व्रजत ब्रह्मलोकम्॥

—अथर्व. १९।७१।१॥

" (मया वर-दा देवमाता स्तुता) मैंने वर देनेवाले देवोंकी माताकी स्तुति की। वह (द्विजानां पावमानी) द्विजोंको पवित्र करनेवाली, और (प्रचोदयन्ती) धर्मकी प्रेरणा करनेवाली है। वह हम सबको आयु, प्राण, संतान, पशु, कीर्ति, धन, ज्ञानका तेज देकर (ब्रह्म-लोकं) ब्राह्मी स्थितिको (व्रजत) प्राप्त होवे।"

"देव-माता" शब्दका अर्थ इन्द्रियोंकी माता अर्थात् बुद्धि, विद्वानोंकी माता अर्थात् ज्ञानशक्ति है। यहां बुद्धि विवक्षित है क्योंकि उसीने ब्राह्मी स्थितिको प्राप्त होना है। अस्तु। इन मंत्रोंके उपदेशोंको गायत्रीमंत्रके साथ तुलना करके विचार करना चाहिए। पूर्वमंत्रसे "धियः" और "धीमहि" का अर्थ स्पष्ट होगा और इस मंत्रसे "धियः प्रचोदयात्" का अर्थ खुलेगा। इसप्रकार तृतीय मंत्रका अर्थ देखा। अब चतुर्थ मंत्रपर विचार करना है:—

मंत्र ४ से ७ तक.

कयोति साम (कया और ऊति वाला सामगायन)

(४) परमेश्वरके आनंदकारक रक्षण-स्वभावका चिंतन।

इन मंत्रोंका अर्थ पूर्वस्थलमें दियाही है। यहां इनके कई शब्दोंके विशेष अर्थ देने हैं:—

(१) कः, कया;=(कः–का)=“कः” शब्द पुल्लिंगमें है और उसीका स्त्रीलिंगी रूप “का” है । इसके अर्थ—“प्रजा–पति (पालनकर्ता ईश्वर), ब्रह्म, विष्णु (व्यापक ईश्वर), यम (नियामक ईश्वर), आत्मा, जीव, मूलतत्त्व, काल, धन, शब्द, शब्द-ज्ञान, सुख, आनंद, आरोग्य, हित, जल, कमनीय, सुंदरता, मन, शरीर, प्रकाश, तेज, मस्तक,” इतने हैं । इनमेंसे आनंद और सौंदर्य यहां विवक्षित है । इन मंत्रोंमें “कया” शब्द “ऊति” शब्दका विशेषण है । “कया ऊत्या” का अर्थ “आनंद और सौंदर्ययुक्त रक्षणद्वारा” ऐसा है । परमेश्वर जो हम सबका रक्षण करता है उसमें आनंद और सौंदर्य विराजमान होते हैं । हमारी रक्षाके लिये उस ईश्वरनें यह विस्तीर्ण विश्व बनाया है । इस विश्वकी ओर देखनेसे सबसे पहिले सृष्टिकी सुंदरता दृष्टिगोचर होती है । सृष्टिके प्रत्येक पदार्थमें एक प्रकारका विशेष सौंदर्य है । सब तत्वज्ञानी इसका प्रथम विचार करते हैं । (Beauty)

सुंदरताके पश्चात् सृष्टिमें आनंद, सुख, खुशी देखनेमें आती है । भोगी लोक भोग लेकर सुख लेते हैं, इन भोगियोंको प्रारंभमें सुख होता है । दूसरे लोक संयमी होते हैं, वे मनोवृत्तियोंका संयम करते हैं और सृष्टिकी सहायतासे अपनी उन्नतिका साधन करते हैं । इन संयमी पुरुषोंको परिणाममें आनंद होता है । सकामता से प्रारंभमें आनंद और निष्कामता से परिणाममें आनंद होता है । मुक्तिधामको पहुंचाने के लिये सृष्टि एक मुख्य साधन होनेके कारण, सृष्टिको आनंद का साधन कहना कोई अत्युक्ति नहीं । जो इस साधनको बरतना नहीं जानते उनको आपत्ति होती है परंतु जो इसको अच्छीप्रकार बरत सकते हैं उनको संपत्ति मिलती है । अर्थात् इस दृष्टीसे सृष्टिमें सुख और आनंद दृग्गोचर होगा । (Happiness; Bliss)

सृष्टिके अंदर तीसरा गुण तेजस्विता है । इसके अतिरिक्त अन्य भावनाएं होती हैं उनका विचार “क” शब्दके जो ऊपर अर्थ दिये हैं उससे हो सकता है ।

(२) ऊती, ऊत्या, ऊतिभिः=“अव्” धातूसे “अवन, अविता, ओम्, ऊती” ये शब्द बनते हैं । “अव्”—धातूके अर्थ “रक्षण, गति, सौंदर्य,

सुख, आनंद, शांति, ज्ञान, तेज, तृप्ति, प्रवेश, श्रवण, स्वामित्व, प्रार्थना, कर्म, इच्छा, प्रकाश, प्राप्ति, संयोग, शत्रुविनाश, स्वीकार, अस्तित्व, वृद्धि, शक्ति, अनुग्रह" इतने हैं। इसलिये ऊती, ओम् और अवनके यौगिक अर्थ हि उतने हैं।

परमेश्वरका रक्षकत्व सृष्टिके द्वारा दिखाई देता है। बालक जन्मतेहि उसकी सहायताके लिये माताके स्तनोंमें दूध तैयार होता है। इसी प्रकार सब स्थानोंपर रक्षा हो रही है। सौंदर्य और आनंदके पश्चात् सृष्टिके निरीक्षणसे पता लगता है कि, सब विश्वमें परमेश्वर की रक्षणशक्ति कार्य कर रही है। (Protection; Motion)

(३) चित्रः="चित्=" धातूसे चित्र शब्द बनता है। चित् धातूके अर्थ—"निरीक्षण करना, चित्तैकाग्र्य करना, दक्ष रहना, जानना, आकलन करना, भासमान होना;"। चित्र शब्दके अर्थ—उत्कृष्ट, विलक्षण, तेजस्वी, शुद्ध, स्वच्छ, विचित्र, नाना रूपवाला, चित्रविचित्र, विविध प्रकारका, आश्चर्यकारक।

सृष्टिके अंदर परमेश्वरकी विचित्रता प्रतिपदार्थमें दिखाई देती है। वृक्ष वनस्पति, प्राणी और अन्य पदार्थोंकी नानाजातियोंमें नानाप्रकार विद्यमान हैं। अनेकता, विविधता और विचित्रता सृष्टिका स्वभावधर्महि है। एक ईश्वरकी बनाई हुई यह विविधता है ऐसा जानकर मनमें विशेषहि आश्चर्य होने लगता है। (Diversity, Variety, Wonderfulness)

(४) सदा-वृधः=(सदा-वृद्धः)=सदा से महान् परमेश्वर है। ईश्वर किसी समय छोटा था और पश्चात् बडा होगया ऐसी बात नहीं; वह शाश्वत समयसे महान् है। उसकी महानता सृष्टिमें भी दिखाई देती है। सूर्यादिक महानसे महान् तेजोगोल उसीकी महानता सिद्ध कर रहे हैं। (Great-ness, Growth)।

(५) सखा=(मित्र)=परमेश्वर सबका परम मित्र है। इसमें विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं। हमारा सच्चा मित्र ईश्वर हि है। (Love and friendship)

(६) शचि-ष्ठया=(शचि-ष्ठा)="शची" शब्दके अर्थ—"वाणी, कर्म, प्रज्ञा, शक्ति, सहायता, प्रेम, कौशल्य, वक्तृत्वशक्ति, दयालुता;" हैं । "शचि-ष्ठ" शब्द का अर्थ शचिके साथ रहनेवाला, उत्तम वक्ता, उत्तम कर्मशील, उत्तम बुद्धिमान्, शक्तिमान्, सबका सहायक अथवा परोपकारशील, प्रेमी, कुशल-चतुर, दयालु है । शचिष्ठ और शचिष्ठा शब्द एकहि अर्थ बतानेवाला है । पहिला पुल्लिंग है और दूसरा स्त्रीलिंगमें है । (Power, strength)

(७) वृता=(वृत्, वृत्त, वर्तन, आवर्त, आवर्तन)=भ्रमण, गति, वारंवार वर्तुल गति, ऐसे इसके अर्थ हैं । वारंवार एक जैसा बनना ऐसा इसका अर्थ है । जगत्में सब गोलगोलांतरोंका और सूर्यादि महान् लोकोंका अपने अपने वृत्तमें नियमित और बार बार भ्रमण चला है, ऋतुओंका क्रम-पूर्वक बारबार आना, शीतोष्ण कालोंका यथापूर्व प्रतिवर्ष होना, यह सब इस शब्दसे जाना जाता है । (Rotundity चक्राकार अथवा बैजवी–दीर्घ-वर्तुलाकार—भ्रमण; Cycle विश्वचक्र; Turning वर्तुलगति; Revolving चक्राकार भ्रमण)

(८) सत्यः—सत्स्वरूप, त्रिकालाबाधित, तीनों कालोंमें एक जैसा, सनातन, अटल, शुद्ध, सत्कर्मशील, विजयी, अटल नियमयुक्त इत्यादि भाव सत्य शब्द बताता है । (Eternal law सनातन सत्य धर्म) । सनातन अबाधित नियमोंका प्रवर्तक परमेश्वर है । यह बात सृष्टिके अबाधित अटल नियमोंका निरीक्षण करनेसे पता लगती है ।

(९) मदानां मंहिष्ठः—हर्ष उत्पन्न करनेवाले पदार्थोंमें ईश्वर सबसे अधिक हर्षदायक है । सब आनंदोंमें उसीसे प्राप्त होनेवाला आनंद श्रेष्ठ है । "मद" शब्दका अर्थ हर्ष, आनंद, स्फुरण है और "मंहिष्ठ" का अर्थ उदार, दाता, बढानेवाला ऐसा है । इसलिये "मदानां मंहिष्ठः" का अर्थ "आनंदोंका उदारतापूर्वक दान करनेवाला, आनंदको बढानेवाला" होता है ।

(१०) अन्धसः=(अन्धस्–अनिति प्राणिति अनेन इति अन्धस् ॥)= जिससे प्राण धारण किया जाता है उसको अन्धस् कहते हैं । प्राण धारण

करनेका साधन होनेसे वनस्पति भोजनको अन्धस् कहते है। अन्न, जीवन, जीवनकला, जीवनशक्ति (life energy), ये इसके अर्थ हैं। जीवन-शक्ति देनेवाले पदार्थोंमें सबसे अधिक जीवनका साधन परमेश्वरहि है। (Life of life)

(११) दृढा=(दृढं–दृढानि)=मजबूत, शक्तिमान्। सृष्टिमें निरीक्षण करनेसे दृढता प्रतीत होती है। पृथ्वी दृढ है, सूर्यचंद्रादि सब दृढ हैं। किसी पदार्थमें देखा जाय तो अपने अपने स्थानमें वे पदार्थ दृढ हैं ऐसा दिखाई देता है। पृथ्वी गतिमान होनेपर भी सब पदार्थोंको स्थिर रखनेके लिये जितनी स्थिरता चाहिए उतनी पृथ्वीमें है। इस प्रकार सब विश्वमें देखने योग्य है। (Firm-ness दृढता, Stability स्थिरता)

(१२) चित्=इसका मूल अर्थ "निश्चित ज्ञान" है। यह शब्द अव्यय होनेपर "निश्चयसे, भी" ऐसे अर्थ बताता है। (Intelligence निश्चित ज्ञान.)

(१३) वसु=(वासयिता)=जिससे प्राणियोंका निवास अच्छी प्रकार हो सकता है। उत्तम रीतीसे रहने सहनेके लिये जो साधन आवश्यक हैं वे सब वसु शब्दसे ज्ञात होते हैं। चूंकी सृष्टिके पदार्थ प्राणियोंकी अवस्था सुखमय करते हैं इसलिये वे वसु हैं। परमेश्वर परमार्थतः सबका निवास कर्ता होनेसे पूर्णतासे वही वसु है। (One who helps to inhabit निवासयिता; Space स्थान। आश्रयदाता)

(१४) आ–रुजे=(रुजो–भंगे)=छिन्नभिन्न करता है। इस क्रियासे परमात्माकी छेदक, भेदक, और विनाशक शक्तिका बोध होता है। (Destroyer प्रलयकर्ता)

(१५) वृषन्=(वर्षणकर्ता)=वृष्टि करनेवाला। जैसा मेघ वृष्टि करके मनुष्य, पशुपक्षि, वृक्षवनस्पति आदिको प्रसन्नतायुक्त करता है वैसाहि परमेश्वर सब आनंदोंकी वृष्टि करके मनुष्योंको तथा प्राणियोंको समाधान पहुंचाता है। इस शब्दके "उत्साही, शक्तिमान्, प्रभावशाली" आदि अर्थ भी हैं।

यजुर्वेद० स्वा० ४

(१६) आ-भर=शब्दका अर्थ देखनेसे परमेश्वर पोषणकर्ता, पालनकर्ता है ऐसा स्पष्ट होता है।

इन मंत्रोंके ये सोलह पद देखने और सोचने योग्य हैं, इन शब्दोंसे किनकिन विशेष गुणोंका ध्वनि निकलता है यह निम्न कोष्टमें दिया हैः—

वैदिक शब्द	अंग्रेजी भाव	गुणोंका बोध
१ कः, का, कया	Beauty, happiness...	सौंदर्य और आनंद.
२ ऊती, ऊत्या, ऊतिभिः, अवता, ओम्, ॐ	Protective motion	संरक्षक गति.
३ चित्रः	Wonderful-ness, variety ...	आश्चर्यमयता, विविधभावयुक्तता.
४ सदावृधः......	Greatness	महानता.
५ सखा	Love and friendship	प्रेम और मित्रत्व.
६ शचिष्ठा	Power, strength ...	बल, शक्तिमत्ता.
७ वृत्............	Rotundity	नियमयुक्त भ्रमण गति देनेका धर्म.
८ सत्यः	Eternal law............	सनातन नियम (धर्म).
९ मदानां मंहिष्ठः	Blissful	शांतियुक्त परम आनंद.
१० अन्धस्	Life energy............	जीवनकला, प्राण.
११ दृढं	Stability	स्थिरता.
१२ चित्	Intelligence...........	निश्चितज्ञान.
१३ वसु	Space, abode, ...	स्थान, निवास करानेकी शक्ति.
१४ आ-रुज्......	Destroyer	प्रलयशक्ति.
१५ वृषन्	Flowing, bestower ...	प्रवाह, दान करना.
१६ आ-भर......	Nourisher	पोषण करना.

सृष्टिका विचार करनेसे ईश्वरके ये गुण सृष्टिमें कार्य कर रहे हैं ऐसा प्रतीत होता है । परमेश्वरकी एकता सृष्टिकी विविधताके लिये कारण होगयी है, यह देखकर महान् आश्चर्य होता है और साथ साथ ईश्वरके अतुल सामर्थ्यकी भी कल्पना होती है ।

इन गुणोंका चिंतन करनेसे परमेश्वरके प्रभावकी कल्पना हो सकती है। इसलिये इन शब्दोंको अच्छी प्रतिभायुक्त काव्यमें यहां ग्रंथित किया है । ताकी उपासक लोक इस काव्यका गायन करते हुए ईश्वरके गुणोंका स्मरण करें, और यथासंभव उन गुणोंको अपनेमें धारण करके अपनी आत्मिक उन्नतिका साधन करें ।

इस प्रकार "कयोति साम" का विचार होगया । अब अगला मंत्र देखना है:—

मंत्र ८

(५) जगत्का एक अधिपति ।

"इस संपूर्ण जगत्का एकहि इन्द्र राजा है । हम सबका कल्याण होवे और सब द्विपाद और चतुष्पादोंका कल्याण होवे ।"

इस जगत्का एकहि अधिपति है । यहां ओहदेदारोंका बीचमें झगडा नहीं । उस एक राजाको मिलनेके लिये किसी दूसरेकी शिफारसकी जरूरत नहीं । पवित्र होकर उसके पास जानेसे उसका दर्शन होता है । पास जानेके लिये चलनेकीभी जरूरत नहीं क्योंकि वह जगत्पति सर्वव्यापक होनेसे प्रत्येक मनुष्यके अंदर विराजमान है । इस लिये केवल अंतःकरणशुद्धिकी आवश्यकता है । जब अंतःकरण पवित्र होगा उसी समय उसका साक्षात्कार होगा । वह सर्वदा सिद्ध है । उसके ठाकुरद्वारेके दरवाजे कभी बंद नहीं होते, सदा खुले रहते हैं । पवित्र बनकर अंदर जानेका यत्न करना चाहिए ।

वह आनंद और कल्याणका स्रोत है । उसके पाससे आनंदके स्रोत

और कल्याणकी नदियां बह रहीं हैं। जो उसमें गोता लगायेगा उसको उस अमृतपानका रसास्वाद मिलेगा।

उन्नतिके मार्ग सदा सबको खुले रहने चाहिए। मनुष्य अपने स्वार्थके कारण प्रतिबंध खडे करता है और फंसता है। यदि प्रतिबंध खडे न करेगा तो सबकी अर्थात् द्विपाद चतुष्पादोंकी अविच्छिन्न उन्नति होगी। हम सबको अपने अंतःकरण ऐसे पवित्र बनाने चाहिए कि ईश्वरका कल्याणमय स्रोत उनमेंसे विना प्रतिबंध चलता रहे। जिसप्रकार मलिनता बढनेसे नालियोंमेंसे पानी चलना बंद होता है उसी प्रकार स्वार्थका कीचड मानवी अंतःकरणमें जमा होनेसे भक्तिका प्रवाह रुक जाता है। अस्तु। इस मंत्रके साथ निम्न मंत्र विचारने योग्य हैः—

> इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृंगिणो वज्रबाहुः॥ सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान्न नेमिः परि ता बभूव॥ ऋ. १।३२।१५॥

"(इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् ईश्वर (यातः) जंगम और (अवसितस्य) स्थावरका राजा है तथा (शमस्य) शांत और (शृंगिणः) सींगवालोंका भी वह (वज्रबाहुः) दण्डधारी अधिपति है। (स इत् उ) वह ही (चर्षणीनां राजा) सब प्रजामात्रका राजा होकर (क्षयति) रहा है। (न) जिसप्रकार (अरान् नेमिः) चक्रनाभीके चारों ओर आरे होते हैं उसीप्रकार (ताः) वह सब प्रजाएं उसके (परि बभूव) चारों ओर हैं।"

अर्थात् परमेश्वर स्थावर, जंगम, शांत और क्रूर, प्राणि और अप्राणि अर्थात् सबका राजा है। चक्रनाभीके समान इस संसारचक्रकी वह नाभी है अर्थात् सब जगतके लिये वही आधार है। तथाः—

> एवा न इन्द्रो मघवा विरप्शी करत्सत्या चर्षणीधृदनर्वा॥ त्वं राजा जनुषां धेह्यस्मे अधिश्रवो माहिनं यज्जरित्रे॥ ऋ. ४।१७।२०॥

"(एव) इसप्रकार (मघ-वा) धनवान् भगवान् (वि-रप्शी) स्पष्ट उपदेश करनेवाला (अन्-अर्वा) अजातशत्रु और (चर्षणी-धृत्) उद्यमी

मनुष्योंका धारण पोषण करनेवाला (इन्द्रः) ईश्वर (सत्या करत्) सत्य शांतता करे। क्योंकि तूं (जनुषां राजा) सब प्रजाओंका राजा है, इस-लिये (अस्मे) हम सबके लिये (माहिनं श्रवः) महत्त्वका यश (धेहि) धारण करो, दो। (यत् जरित्रे) जो तेरे भक्तोंके लिये योग्य होता है वही हम सबको दो।" तथाः—

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि
विषुरूपं यदस्ति ॥ ततो ददाति दाशुषे
वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥ ऋ. ७।२७।३॥

(अधि क्षमि) इस पृथ्वी आदि गोलोंपर (यत् वि-सु-रूपं) विविध रूपवाला जो कुछभी (अस्ति) है उस सब (जगतः) जगत्का और (चर्षणीनां) प्राणियोंका वही (इन्द्रः राजा) ईश्वर राजा है। (ततः) इसलिये वह (दाशुषे) दानकर्ता अर्थात् परोपकारशील मनुष्यको (वसूनि ददाति) धन देता है। (उपस्तुतः चित्) उसके गुणोंका चिंतन करनेपर (अर्वाक् राधः चोदत्) वह हमारे पास विविध सिद्धियोंको भेजता है।"

इस प्रकार सब जगत्का एक अधिपति होनेके विषयमें वेदमें कहा है। ये भाव यहां देखने योग्य हैं। अब अगले मंत्र देखीएः—

मंत्र ९ से ११ तक।

(६) कल्याण प्राप्तिके लिये प्रार्थना।

इन तीन मंत्रोंमें मित्र वरुणादि शब्द एकएक विशेष गुणके प्रतिनिधि बनकर रहे हैं। उनके विषयमें निम्न अर्थ देखने योग्य हैंः—

(१) मित्रः—मान्यकर्ता, प्रेमी सहायक, यह प्रेमका प्रतिनिधि है। (Friend, love) प्रेम, भक्ति, प्रकाश, ज्ञान।

(२) वरुणः—"वृ-वरणे" धातूसे यह शब्द बना है। चुनना, पसंद करना, हंसक्षीरन्यायसे अच्छेका स्वीकार और बुरेका परित्याग करना, पूर्णको अपनेमें मिलाना और हीनको दूर करना ये भाव इसमें हैं।

(Selection) पसंदी, श्रेष्ठता, (Honour) सन्मान, (Unity) स्वीकार करना, मिलाना आदि गुणोंका यह प्रतिनिधि है।

(३) अर्यमा=(अर्य–मा; अर्य–मन्; आर्य–मन)=आर्य अथवा अर्य शब्दका श्रेष्ठ अर्थ है। श्रेष्ठता, सरलता, प्रगति, आदि भाव अर्य शब्द बताता है। श्रेष्ठ-मन, सरल-मन, प्रागतिक–मन इन शब्दोंके साथ मिलनेवाला अर्य–मन् शब्द है। श्रेष्ठ कनिष्ठका विचार, सरलता और टेढे-पनका निश्चय, प्रगति (उन्नति) और परागति (अवनति) का संकल्प जिससे जाना जाता है वह *अर्यमापन है। सदसद्विवेकबुद्धि अथवा न्याय-बुद्धिका यह प्रतिनिधि है। (Justice न्याय)

(४) इन्द्रः=शक्ति, सामर्थ्य, प्रभुत्व, स्वामित्व आदि शौर्यवीर्यादि गुणोंका इंद्र शब्द यहां प्रतिनिधि है। (Active power, strength)

(५) बृहस्पतिः=(बृहः–पतिः)=ज्ञानपति, वाक्पति। यह शब्द ज्ञान, गुरु–त्व, पठनपाठन आदिका प्रतिनिधि है। (Knowledge)

(६) विष्णुः=व्यापकशक्ति। जो व्यापकशक्ति सब जगतकी रक्षा कर रही है। दुष्टोंका नाश और सुष्टोंका रक्षण जो करती है उस शक्तिको यह शब्द बताता है। (Preservative force)

(७) उरु–क्रमः=(उरु) महान् (क्रम) क्रम, अनुक्रम, व्यवस्था। इस जगत्में क्रम अर्थात् पूर्वापर व्यवस्था उरु अर्थात् महान् है। वसंत ग्रीष्मादि ऋतुओंका क्रम, शीतोष्ण कालोंका क्रम, बालतरुणवृद्धावस्थाका क्रम, जन्ममरणका क्रम, सूर्यादि गोलोंके भ्रमणकी व्यवस्था ये सब क्रम महान् शक्तिसे व्यवस्थित हुए हैं। उस नियामक शक्तिका यह प्रतिनिधि है। (उरु Excellent, क्रमः Order)

(८) वातः="वा–गतिगन्धनयोः" धातूसे वात शब्द बनता है। गति, हलचल और प्रतिबंधक शक्तिका गंधन अर्थात् नाश ये अर्थ वात शब्दके यौगिक हैं। वात अथवा वायुके साथ जीवनशक्ति अथवा प्राणशक्तिका

---

* **अर्य-मा**=आर्यत्वका मिनने मापने वाला; **अर्य-मन्**=श्रेष्ठ मनवाला; अर्यमा-पन= अर्यमाका भाव; **अर्य-मापन**=आर्यत्वको मिननेका धर्म।

नित्य संबंध है। इसलिये जीवनशक्ति, हलचल और प्रतिबंध-निवारण इन शक्तियोंका यह प्रतिनिधि है। (Movement, life energy)

(९) सूर्यः—प्रकाश और दिनकी देवता है। काल, समयका भी इसको प्रतिनिधि कहा है। प्रकाश शब्द प्रबुद्धता (Enlightenment) का द्योतक है।

(१०) पर्जन्यः—(पर—जन्य, पुर—जन्य) पूर्ति अथवा तृप्ति जिससे प्राप्त होती है। मेघोंको पर्जन्य इस लिये कहते हैं कि उनकी वृष्टिसे सब जगत्की तृप्ति होती है। तृप्ति (Contentment) का प्रतिनिधि यह है।

(११) अहः=(अ—हर्; अ—हन्)=अहननीय, अविनाशी कालका यह प्रतिनिधि है। दिनका कोई समय व्यर्थ खोनेके लिये योग्य नहीं। अ-हर्। अ-हरणीय। (Imperishability)

(१२) रात्रीः—(रमयित्रीः, राति सुखं इति) दूसरोंको सुख देनेकी शक्तिका यह प्रतिनिधि है। रात्रिशब्दका मूल अर्थ सुख देना, रममाण करना, उपकार करना है। (Benevolence) कृपा, दयालुता, परोपकार।

(१३) इन्द्राग्नी=(इन्द्र—अग्निः)=इन्द्र शब्द प्रभुत्वका द्योतक है और अग्नि शब्द तेजका द्योतक है। (Power and spirit) शक्ति और तेजस्विता।

(१४) इन्द्रावरुणौ—(इंद्र-वरुण) शक्ति और ऐक्य। (Power and unity or honour)

(१५) इन्द्रापूषणौ—(इन्द्र—पूषण)=पुष्टि करनेवालेको पूषण अर्थात् पोषक कहते हैं। शक्ति और अभ्युदय (Power and prosperity)

(१६) इन्द्रासोमौ—(इन्द्र—सोम)=शांतिका प्रतिनिधि सोम है। शक्ति और शांति (Power and tranquility)

इतने गुणोंके द्वारा हमारा कल्याण हो, यह प्रार्थना और इच्छा इन मंत्रोंमें है। ये विविध गुण हमारे अंदर प्राप्त होकर, ये परमात्मशक्तियां हमारे अंदर स्थिर होकर हमारा अभ्युदय होवे, यह भक्तकी इच्छा इसमें

व्यक्त होती है । मानवी उन्नतिके साधक ये गुण हैं । इनपर अवश्य विचार होना चाहिए, और इनकी अपने अंदर स्थापना करनेके लिये प्रयत्न होना चाहिए।

उक्त विस्तृत अर्थ मनन करनेके लिये सुगम हो, इस हेतुसे उक्त आशयको निम्न कोष्टकमें रख देता हूं और साथ साथ कयोति साम (मंत्र ४-७) के शब्दभी रखे हैं, पाठक दोनोंके अर्थोंको साथसाथ सोचें:—

परमात्म-शक्ति	कयोतिसामके शब्दोंकी तुलना	मनुष्य-व्यक्ति-में गुण
(१) मित्रः—मित्रता	(सखा)	भक्ति, प्रेम, प्रकाश (Devotion and love)
(२) वरुणः—वरण, वर-त्व	(सदा-वृधः)	श्रेष्ठत्व, उत्तमत्व, सत्व, ऐक्य (Honour and unity).
(३) अर्यमा—आर्यमन	(सत्यः)	सरलता, न्यायीपन, निःपक्षपातीपन (Justice)
(४) इन्द्रः—ऐश्वर्य	(शचिष्ठा)	प्रभुत्व, स्वामित्व (Sovereignty, Power)
(५) बृहस्पतिः–ज्ञानपति	(मदानां मंहिष्ठः)	ज्ञान, तृप्ति (Knowledge, satisfaction)
(६) विष्णुः—व्यापक	(अन्धस्)	रक्षकशक्ति (Preservative power, vitality)
(७) उरुक्रमः–महान्, अनुक्रम	(वृत्)	महान् व्यवस्था (Excellent order)
(८) वातः—गति	(आ-रुज्)	हलचल, भंजन (Movement, decomposition)
(९) सूर्यः—प्रकाश	(चित्)	प्रबुद्धता(Enlightenment)
(१०) पर्जन्यः—पूर्तिजनक	(वृषन्)	तृप्ति (Contentment)
(११) अहः—अविनाशित्व	(ऊती)	विजयशालित्व (Unbeatenness)

(१२) राश्रीः—रमयिता......(का, कः) ...परोपकार, रमणीयता... (Benevolence, happiness)

(१३) इन्द्राग्नी—ऐश्वर्य-तेज... (वसुः) ...शक्तियुक्त तेजस्विता... (Power and spirit)

(१४) इन्द्रावरुणौ–"–ऐक्य... (दृढः) ...शक्तियुक्त ऐक्य (Power and unity)

(१५) इन्द्रापूषणौ–"–पोषण (आ-भरण)...शक्तियुक्त पुष्टि (Power and growth)

(१६) इन्द्रासोमौ–"–शांति...(चित्रः)......शक्तियुक्त शांति (Power and tranquility)

इस प्रकार ईश्वरके गुणोंको अपने अंदर धारण करना चाहिए । इस प्रकार ग्यारह मंत्रोंतक विचार हुआ. अब अगला मंत्र देखना हैः—

मंत्र १२

(७)—जलसे तृप्ति ।

"दिव्य उदकसे हमारे अभीष्टकी प्राप्ति, हमारा कल्याण, हमारी तृषा-शांति और हमारा रोग-निवारण हो ।"

जलसे तृषाशांतिका अनुभव सब प्राणिमात्रको है । जलसे रोग निवारण होते हैं, और रोगनिवारण होनाहि अभीष्ट प्राप्तिके लिये पुरुषार्थ करने और कल्याणप्राप्तिके मार्गपर चलनेका मुख्य साधन है । जबतक शरीरमें बीमारियां सतातीं रहेगीं तबतक कोई पुरुषार्थ होना असंभव है । सब पुरुषार्थके लिये आरोग्य और शक्तिकी अत्यंत आवश्यकता है । वह आरोग्य जलके योग्य उपयोगसे प्राप्त होता है ।

उदकके वैदिक सौ नाम निघण्टु अ. १।१२ में दिये हैं । उनमेंसे कई नामोंका विचार यहां करनेसे जलके विषयक वैदिक कल्पनाका पता लगेगा॥

(१ पुरीषं-पुरि-शं)=शरीररूपी पुरी अथवा नगरीमें शं अर्थात् शांति-

सुख उत्पन्न करनेवाला उदक है। (पुरि-इषं) शरीररूपी नगरीका यह इषं अर्थात् अन्न, भोग, उत्साहशक्ति, स्वास्थ्य है। (२ रेतः)=शरीरका वीर्यहि जल है। वीर्यके साथ जलका संबंध है। (३ जन्म)=शरीरमें जनन-शक्ति उदकके कारण स्थिर रहती है। (४ सु-क्षेम)=उत्तम क्षेम अर्थात् आराम, उन्नति, सुरक्षितता, बुनियाद, शांति, सुख देनेवाला पानी है। (५ धरुणं)=शरीरकी धारणा करनेवाला जलहि है । (६ अ-हिः)= त्यागने योग्य नहीं। शरीरमें जलकी आवश्यकता बहुत है इसलिये जल-पानका निःशेष त्याग नहीं किया जा सकता। (७ अ-क्षरं)=अविना-शक अर्थात् शरीरका नाश न करनेवाला उदक है। (८ तृप्तिः)=जलसे प्यास बूझती है और तृप्ति होती है। (९ रसः)=रुचि आस्वादके लिये यही कारण है। (१० भेषजं)=औषध यही उदक है। (११ जलाषं)आराम देने (Healing)वाला यही जल है। सुखशांति यही देता है।(१२ओजः)= शरीरका ओज अर्थात् सतेज बल इसी जलके कारण रहता है । (१३ सुखं)=सु अर्थात् उत्तम ख अर्थात् इन्द्रियां अथवा इन्द्रियोंका आरोग्य जलसेहि रहता है। (१४ क्ष-त्रं)='क्षत्' अर्थात् व्रण, फोडा, फुनसी, तखलीफ आदिसे 'त्र' अर्थात् बचानेवाला उदक हि है। (१५ शुभं)=सब शुभगुण इसके आश्रयसे रहते हैं। (१६ यशः)=यश भी इसीसे प्राप्त होता है क्यौंकि यशके लिये आरोग्य और आरोग्यके लिये जलकी आवश्य-कता होती है। (१७ अन्नं)=उदकहि अन्न है । (१८ हविः)=शरीरके यज्ञमें उदकरूपी हविका हवन होता है। (१९ पवित्रं)=पवित्रता करने-वाला उदक है। (२० अ-मृतं)=अमरपन अर्थात् अपमृत्यु आदिको हटा-कर पूर्ण आयु आरोग्यके साथ देनेवाला जल है । (२१ शुक्रं)=वीर्य और बल जलसे होते हैं। (२२ वारि)=सब दोषोंका निवारण करनेवाला उदक है। इस प्रकार जलके नामोंका विचार करनेसे उदकके गुण विदित हुए। पाठकोंको चाहिए कि वे सौ नामोंका विचार करके जलके सब गुणोंको जानें। विशेष कर वैद्योंको इसका ज्ञान भली प्रकार हो सकता है । अब देखना है, कि वेदमें जलचिकित्साके विषयमें क्या कहा हैः—

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ॥
अग्निं च विश्वशंभुवमापश्च विश्वभेषजीः ॥

ऋ. १।२।१२

"मुझे सोमने कहा कि, (अप्सु अंतः) उदकोंमें (विश्वानि भेषजानि) सब दवाईयां हैं। अग्नि सब सुखदेनेवाला और पानी सब औषधियोंसे युक्त है।"

आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ॥
आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥

ऋ. १०।१३७।६॥ अथर्व० ३।७।५॥, ६।९१।३॥

"जल निश्चयसे हि (भेषजीः) औषधी है । जल (अमीव-चातनी) रोगोंको हटानेवाला है। जल सब रोगोंकी दवा है। (ताः ते) वह जल तेरे लिये (भेषजं कृण्वन्तु) दवाई बने ॥"

आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः
पुनन्तु ॥ विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः
शुचिरा पूत एमि ॥ ऋ.१०।१७।१०॥ अथर्व.६।५१।२॥
यजु.वा.सं.४।२॥

"जलरूपी माताएं (अस्मान्) हम सबको शुद्ध करें; (घृतेन) उदकसे पवित्र करनेवाले हम सबको पवित्र करें; (देवीः) दिव्य उदक (विश्वं रिप्रं) सब मल निश्चयसे (प्रवहन्ति) बहा देते हैं। (उत् इत्) निश्चयपूर्वक (आभ्यः) इस जलसे (शुचिः पूतः) शुद्ध और पवित्र होकर मैं (एमि) आगे बढता हूं ॥

इस प्रकार जलके विषयमें वेदमंत्रोंका उपदेश है । इन मंत्रोंको साथ साथ देखनेसे इस बारहवे मंत्रका अर्थ अधिक स्पष्ट हो सकता है । अब अगले मंत्रका विचार करना है:—

मंत्र १३

(८) निष्कंटक भूमि ।

"हे भूमि ! तूं हम सबके लिये सुखदायक, निरोगी और विस्तृत आश्रय देनेवाली होकर सुखदायक हो ।"

इस मंत्रमें "अनृक्षरा" शब्द विशेष विचार की दृष्टिसे देखने योग्य है। इसके दो अर्थ होते हैं। (१) अन्-ऋक्षरा अर्थात् कंटकरहित। रहनेका स्थान कांटोंसे भराहुआ न हो। बालबच्चे घूमते रहते हैं मनुष्य संचार करते हैं उनको कांटोंका उपद्रव न हो ऐसी भूमि साफ और शुद्ध रखनी चाहिए। (२) अ-नृ-क्षरा अर्थात् अ-मनुष्य-नाशिनी, मनुष्योंका विनाश न करनेवाली भूमि हो। कई भूमियां ऐसीं होतीं हैं, कि जिसमें बुखार ज्वर आदि रोगोंकी पीडा बहुत होती है, और कई स्थान ऐसे होते हैं कि, जहां आरोग्य और बलकी वृद्धि होती है। रहने सहनेकेलिए स्थान ऐसा होना चाहिए कि, जो बीमारियां उत्पन्न करनेवाला न हो।

"निवेशनी" शब्दका अर्थ बस्ती करके, घर बनाकर रहने योग्य। भूमि ऐसी हो कि, जहां व्याधियां न हों और घर बनाकर रहने योग्य हो। इसी प्रकारकी भूमीपर रहनेसे सुख शांति और आराम मिल सकता है। देखिए:—

पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽन्तरिक्षं
दिव्यात् पात्वस्मान्॥ ऋ. ७।१०४।२३॥, १०।५३।५॥
अथ. ८।४।२३

हम सबको पृथिवी पार्थिव पापसे (पातु) रक्षण करे। और अंतरिक्ष आकाशस्थ पापसे बचावे।"

पार्थिव आकाशस्थ पापोंका यहां उल्लेख है। पृथ्वीसंबंधी पाप भूमिके कारण होनेवाले रोग हैं और आकाशस्थ पाप हवाके कारण होनेवाले रोग हैं। मंत्रमें "अंहसः पातु।" ऐसे शब्द हैं। दबाना, दुःख उत्पन्न करना ऐसा "अंह्" धातूका अर्थ है जिससे "अंहस्" शब्द बनता है। अर्थात् अंहस् शब्दका मूल अर्थ "दुःखदायक विकार" है। पृथिवीके कारण उत्पन्न होनेवाले दुःखदायक विकार और आकाशस्थ वायुके कारण उत्पन्न होनेवाले दुःखदायक विकार ऐसे दो व्याधियोंके प्रकार होते हैं जिनका उल्लेख उक्त मंत्रमें है। पृथिवी जल और वायु जहां अच्छा हो वहां हि रहना चाहिए।

यहां मंत्र १३ का विचार हुआ। अब अगले मंत्र देखने हैं:—

मंत्र १४ से १६ तक।

(९) जलसे बल और सुखकी प्राप्ति।

इन तीन मंत्रोंमें जलोंसें निम्न बातें होतीं हैं ऐसा कहा है:—

(१) मयः—उत्साह, भोग, सुख और आनंद।

(२) ऊर्जः—हिम्मत, शक्ति, बल, तेजस्विता।

(३) रणः—शब्द, वक्तृत्व, आराम, स्वास्थ्य, कुशलता। (रण्-शब्दे गतौ च)

(४) चक्षुः—तेज, चमकाहट, दृष्टि, दर्शन, दिव्यदृष्टि।

(५) शिव-तमः—अत्यंत कल्याण।

(६) रसः—रुचि, आस्वाद।

(७) क्षयः—निवास, रहना, आरोग्य, गति, हलचल। (क्षि-निवासे)

इतने विशेष महत्वके शब्द इन मंत्रोंमें आये हैं। जलके कारण इतने गुण प्राप्त होते हैं। इन शब्दोंको जलनामोंके साथ तुलना करके देखना चाहिए। जलनामोंका विवेचन मंत्र १२ के स्पष्टीकरण में किया है। इस प्रकार विचार करनेके पश्चात् अगला शांतिमंत्र देखीए:—

मंत्र १७

(१०) सच्ची शांति की प्राप्ति।

इस मंत्रमें कहे हुए बाह्य पदार्थोंके साथ किन किन आंतरिक पदार्थोंका संबंध है, इसका विचार निम्न कोष्टकसे होगा:—

बाह्य पदार्थ		आंतरिक भाव.
(१) द्यौः—द्युलोक (Light),	(स्वः)	...मस्तिष्क, मगज (Brain)
(२) अंतरिक्षं(Middle place)	(भुवः)	...अंतःकरण (Heart)
(३) पृथिवी—(Earth)	(भूः)	...स्थूल शरीर (Physical body)
(४) आपः—(Water)	(आपः)	प्राण (Life breath) रुचि, स्वाद (Taste)रुधिर (Blood)
(५) ओषधयः (६) वनस्पतयः (Herbs)	(रसः)	अन्न...(Food) दवाईयां...(Medicines)
(७) विश्वेदेवाः-सर्वे विद्वांसः (All the learned)	(ज्योतिः)	...सर्व दिव्यगुण (All good qualities)
(८) ब्रह्म—परमात्मा (Supreme spirit)	(ब्रह्म)	...आत्मा और ज्ञान (Soul and knowledge)
(९)सर्वं—सृष्टं जगत् (Creation)	(अमृतं)	...सब शरीर (The whole body) (पंचकोश)
(१०)शांतिः—(Peace)	(ॐ)	...समाधान (Tranquility)

इस कोष्टक से पता लगेगा कि बाह्य जगत्में शांति किन पदार्थोंसे होनी है और अपने शरीरमें किन पदार्थोंसे होनी है। बाह्य सृष्टिके अंदर जो पदार्थ हैं, उनके अल्प अंश लेकर हि हमारा शरीर बना है। इस लिये जिनसे बाहरके सृष्टि में शांति होनी है, उनके प्रतिनिधिभूत शरीरमें रहनेवाले पदार्थोंसेहि शरीरमें शांति होनी है। इस प्रकार इस मंत्रपर विचार करना चाहिए।

ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्।"

—तै. आ. १०।१५।१॥

इस तैत्तिरीय आरण्यकमें दिये हुए गायत्रीशिरस् के शब्दोंके साथ उक्त शांतिमंत्रके पदोंकी तुलना करनी चाहिए। तुलना करनेके लिये ऊपरके कोष्टकमें गायत्रीशिरस्के शब्द दिये हैं। अब और प्रकारसे तुलना करनी है:—

	शांतिमंत्र के शब्द	गायत्रीशिरस् के शब्द	व्याहृति के शब्द	गायत्रीमंत्र के शब्द	देवता वाचक शब्द
१	द्यौः	स्वः(आनंदः)	स्वः(व्यानः)	देव	आदित्यः, मित्र,
२	अंतरिक्षं	भुवः(चित्)	भुवः(अपानः)	धियः	वायुः, वातः,
३	पृथिवी	भूः(सत्)	भूः(प्राणः)	तत्	अग्निः, पूषा,
४	आपः	आपः	जनः	सविता (प्र-सविता)	वरुणः, पर्जन्यः, सोमः,
५	ओषधयः	रसः			
६	वनस्पतयः				
७	विश्वेदेवाः	ज्योतिः	सत्यं	सत्यं	विश्वेदेवाः, अर्यमा,
८	ब्रह्म	ब्रह्म	महः	वरेण्यं	बृहस्पतिः
९	सर्वं	अमृतं	तपः	भर्गः	इन्द्रः,विष्णुः,सूर्यः, अहः रात्रीः,उरुक्रमः
१०	शांतिः	ओम्	ॐ	अ-उ-म्	अग्निः

पाठकोंको उचित है कि, सब मंत्रोंका पूर्वापर संबंध देखकर तथा शब्दोंका यौगिक अर्थ देखकर इन कोष्टकोंका विचार करें। इन कोष्टकोंके पूर्ण होनेसे हि वेद मंत्रोंके अर्थ खुलनेवाले हैं। पाठकोंको चाहिए कि इनपर स्वतंत्रतापूर्वक विचार करें और इनको शुद्ध और ठीक बनानेका यत्न करें।

इस प्रकार विचार करनेके पश्चात् अगला मंत्र देखीए:—

मंत्र १८

(११) मित्रकी दृष्टिसे सबको देखना।

"हे सर्वशक्तिमान् मेरा बल बढाओ! (१) मुझे सब मनुष्य मित्रकी दृष्टिसे देखें। (२) मैं सबको मित्रकी दृष्टिसे देखता हूं। (३) हम सब परस्पर मित्रकी दृष्टिसे देखें॥"

इस मंत्रमें तीन अवस्थाओंका वर्णन है। (१) पहिली अवस्थामें प्राणिमात्र चाहते हैं, कि अपने साथ सब जगतका व्यवहार मित्रत्वके साथ हो। सब दूसरे लोक मेरा हित करें, मेरे फायदेके लिये मरें, स्वयं कष्ट उठाकर मुझे सुख दें, मेरे साथ मीठाभाषण करें आदि। सब यही चाहते हैं।

(२) परंतु जिस समय मनुष्य थोडासा प्रबुद्ध होता है, उस समय उसको ज्ञान होता है कि, दूसरे तबतक मेरे साथ वैसा अच्छा वर्ताव नहीं करेंगे जबतक मैं उनके साथ वैसा अच्छा वर्ताव न करूंगा। इसलिये वह इस द्वितीय अवस्थामें अपना सुधार करनेके लिये सिद्ध होता है और कहता है कि, मैं दूसरोंके साथ वैसा बर्ताव करूंगा कि जैसा मेरे साथ दूसरोंको करना चाहिए। मैं मित्रकी दृष्टिसे सबकी ओर प्रथम देखता हूं। क्योंकि जबतक मैं सबका मित्र नहीं बनूंगा, तबतक सब मेरी मित्रता करनेके लिये नहीं आयेंगे। सबको मित्र बनानेके लिये पहिला प्रारंभ मेरेसे होना है। दूसरोंको बुरा भला कहनेसे कोई लाभ नहीं, जबतक मैं वैसा नहीं बनूंगा। मेरे सुधारपर सबका सुधार है। मुझे प्रथमतः उचित है कि, मैं सबसे पहिले दूसरोंका हित करूं, दूसरोंकी सहायता करूं, मैं अपने ऊपर कष्टोंको लेकर दूसरोंको सुख पहुंचाऊं, मैं सबके साथ मीठा भाषण करूं और सबकी ओर मित्रकी दृष्टिसे देखूं। इस प्रकार इस अवस्थामें यह मनुष्य अपनी त्रुटियोंको दूर करनेकी तैयारीमें लगता है। वह दूसरोंको दोष नहीं देता, परंतु स्वयं दिनरात अपनी शुद्धिमें लगता है। और जो अच्छा नियम ज्ञात हुआ होगा उसको अमलमे लाने लगता है।

जो पहिली अवस्थामें दूसरोंको अपना सेवक बनाना चाहता था, वही दूसरी अवस्थामें जनताकी सेवा करनेके लिये खडा होता है। पहिली अवस्थामें यह अपने आपको सब जगत्का प्रभू समझता था, इसलिये सब इसका द्वेष करते थे। परंतु दूसरी अवस्थामें यह जनताका सेवक बनतेहि सब इसका आदर करने लगते हैं।

(३) इन दोनों अवस्थाओंके अनुभव लेनेके पश्चात् उसको तीसरी अवस्था प्राप्त होती है। इस अवस्थामें जानेके समय उसको ज्ञान होता है कि, केवल दूसरोंने मेरी ओर मित्रकी दृष्टिसे देखा, अथवा केवल मैंनें

अन्योंकी ओर मित्रकी दृष्टिसे देखा, तो कार्य नहीं होगा। दोनोंकी परस्परकी ओर मित्रताकी दृष्टि चाहिए। यदि अन्य सब मेरा हित करने लगेंगे और मैं उनकी पर्वाह बिलकुल न करूंगा, तो द्वेष बढेगा। तथा मैं दूसरोंके लिये अपना सर्वस्व त्याग करने लगूं, परंतु दूसरे मेरी कोई पर्वाह न करेंगे, तोभी विपत्ति बनी रहेगी। इसलिये समाजके सार्वजनिक हितके लिये अत्यंत उत्तम अवस्था यही है कि, मैं और अन्य सब मिलजुलकर परस्पर मित्रकी दृष्टिसे देखें, परस्पर हित करें, और परस्परकी सहायता एक दूसरा करता रहे।

ये तीन अवस्थाएं मंत्रोंके तीन विभागोंमें कहीं है। पाठकोंको उचित है कि, वे इनको अच्छीप्रकार विचारकी दृष्टीसे देखें। मित्रताके विषयमें वेदोंमें कहे हुए उपदेश देखने योग्य हैं:—

परमेण धाम्ना दृंहस्व॥ वाज.सं.यजु. १।२॥ शत.१।७।१।११

"श्रेष्ठ तेजस्विताके साथ मेरा बल बढाओ।" तथा:—

उत्तिष्ठत संनह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम्॥
संदृष्टा गुप्ता वः सन्तु या नो मित्राण्यर्बुदे॥

अथर्व. ११।९।२

"उठो और (संनह्यध्वं) अपनी तैयारी करो। परस्पर मित्र होनेके कारण आप (देव-जनाः) देवोंके समान मनुष्य हैं। हे (* अर्बु-दे) गति देनेवाले! हलचल करनेवाले! (वः नः) आपके और हम सबके (यानि मित्राणि) जो सब मित्र हैं, वे (गुप्ताः) अच्छी प्रकारसे सुरक्षित हुए हुए (सं-दृष्टाः सन्तु) दीखते रहें।"

इस मंत्रमें जो परस्पर मित्र बनकर एक संघशक्तिसे रहते हैं, वे देव-जन-देव मनुष्य-दिव्य लोग-होते हैं, ऐसा जो कहा है, वह बहुत मनन करने योग्य है। और देखीए:—

* "अर्व-गतौ" इस धातूसे अर्बु शब्द बनता है। इससे अर्बुद शब्दका "संचालक, प्रेरक" अर्थ स्पष्ट है। इसके अन्य अर्थ यहां अभीष्ट नहीं।

यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा ॥
अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिंसमानस्य सश्चिरे ॥

ऋ. ५।६४।३॥

"निश्चयसे उत्तम गतिको (अश्यां) प्राप्त हों, इसलिये मित्रके (पथा) मार्गसे मैं (यायां) चलता रहता हूं। इस (अहिंसमानस्य मित्रस्य) कष्ट न पहुंचानेवाले मित्रके (शर्मणि) रक्षण और सुखमें (सश्चिरे)चलते हैं।" इस मंत्रमें मित्रके मार्गसे चलनेके लिये कहा है। तथाः—

मित्रस्य चर्षणी-धृतोऽवो देवस्य सानसि ॥
द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥ ऋ. ३।५९।६॥ यजु. ११।६२॥
तै. सं. ३।४।११।५॥ मै.सं. १।५।४॥

"(चर्षणी-धृतः) उद्यमशील मनुष्योंको धारण करनेवाले (देवस्य) दिव्य (मित्रस्य) मित्रका (अवः) रक्षण (चित्र-श्रवः-तमं) विलक्षण यशवाला (द्युम्नं) तेजस्वी (सानसि) विजयरूप होता है।" इस मंत्रमें "चर्षणीधृतः मित्रस्य" इन पदोंद्वारा मित्रता लोकोंको एक संघमें लानेवाली है ऐसा ध्वनित किया है। और इस प्रकारकी मित्रता यशका दान करनेवाली है ऐसा भी कहा है। तथाः—

तवाऽहमग्न ऊतिभिर्मित्रस्य च प्रशस्तिभिः ॥
द्वेषो युतो न दुरिता तुर्याम मर्त्यानाम् ॥

ऋ. ५।९।६॥

"हे तेजस्विन् ! तेरे (ऊतिभिः) रक्षणोंके और मित्रकी (प्रशस्तिभिः) सहायताओंके साथ युक्त होते हुए (मर्त्यानां) मरणशील मनुष्योंके (द्वेषः न दुरितानि) परस्परके द्वेषको, पापोंके समान (तुर्याम) त्वरासे दूर करेंगे।" इस मंत्रमें हलचल और मित्रभावके फैलानेसे आपसके झगडे दूर हो सकते हैं यह ध्वनि है। इस मंत्रके साथ मैत्रायणी संहिताके मंत्र देखीएः—

१ मित्रस्य वश्चक्षुषा प्रेक्षे ॥ मै.सं. १।१।५॥, १।३।२॥,४।१।५॥, ४।६।१६॥

२ मित्रस्य वश्चक्षुषाऽवेक्षे ॥ मै. सं.१।१।७॥,१।४।६॥,४।१।७॥,
४।९।१६ ॥

३ मित्रस्य वश्चक्षुषा समीक्षन्ताम्॥ मै.सं ४।९।२७॥.४।१४०।७

"(१) मित्रके समान दृष्टिसे (प्रेक्षे) मैं देखता हूं। (२) मित्रके समान दृष्टिसे (अवेक्षे) मैं देखता हूं। (३) मित्रके समान दृष्टिसे (समीक्षन्तां) सब देखें।" तथा गृह्यसूत्रोंमेः—

मित्रस्य चक्षुर्धरुणं बलीयः ॥ शां-गृ. ३।१।३०॥
पार. गृ. ३।२।१०॥

"मित्रकी दृष्टि सबका धारण करनेवाली और बल देनेवाली है।" इस प्रकार मित्रदृष्टिका वर्णन इस मंत्रके साथ देखने योग्य है। अब अगला मंत्र देखीए:—

मंत्र १९

(१२) परमेश्वरकी जागृतिके साथ जीवन व्यतीत करना ॥

"हे शक्तिमन् ईश्वर ! मुझे आत्मिक बल दे, ताकि मैं तुझे सर्वत्र साक्षात् देखता हुआ, बहुत समयतक उत्तम जीवन व्यतीत करूं।"

परमेश्वर सर्वव्यापक है। उसको सर्वत्र देखने और अनुभव करनेवाला मनुष्य बुरा कार्य नहीं कर सकता। बुरा कार्य न होनेसे पापमें डूबता नहीं। अर्थात् परमेश्वरका सर्वत्र अनुभव करनेवाला मनुष्य प्रतिदिन उन्नत होता है। और ऐसे मनुष्योंका समाज कभी अवनत नहीं होता।

परमेश्वर सर्वसाक्षी, सर्वद्रष्टा है, मेरे मनके व्यापार भी वह जानता है । उसको विदित न करता हुआ, कोई कार्य किसी स्थानपर मैं नहीं कर सकता । इसलिये मुझे उचित है कि, मैं सदा सर्वदा उत्तम कर्महि करता रहूं ।

ईशा वास्यमिदꣳसर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् ॥
* तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥

य. वा.सं. ४०।१॥ बृहत्पराशरसं.९।२१४॥

"(जगत्यां जगत्) इस हलचलवाले जगत्‌में जो कुछ पदार्थमात्र है उसमें (ईशा) परमेश्वर वसता है । उसके दिये हुए का भोग करो । किसीके धनकी लालच न करो ।" इस मंत्रको इस मंत्रके साथ पढनेसे बहुत अच्छा उपदेश मिल सकता है । इस प्रकार १९ वे मंत्रका विचार हुआ; अब अगले मंत्र विचारने हैं:—

मंत्र २० और २१

(१३) परमेश्वरको नमन ।

इन दो मंत्रोंमें जो परमेश्वरके नाम और विशेषण आये हैं, उनका विवेचनः—

---

* "ईशोपनिषद्का स्वाध्याय" नामक पुस्तकमें इस मंत्रकी संपूर्ण व्याख्या देखीए ।

(१) हरसे=(हरः, हरस्)=हरणकर्ता, आपत्तियोंका नाश करनेवाला, तेजस्वी, बलवान्।

(२) शोचिषे=(शोचिः, शोचिष्)=तेजस्वी, शुद्धकर्ता।

(३) अर्चिषे=(अर्चिः, अर्चिष्)=प्रकाशरूप, पूजनीय।

(४) पावकः=पवित्रता करनेवाला।

(५) शिवः=कल्याणरूप।

(६) विद्युते=(वि-द्युते)=विशेष तेजस्वी।

(७) स्तनयित्नवे=शब्द करनेवाला, शब्दोंका दाता, वाणीका दाता।

(८) भगवन्=(भग-वन्)=ऐश्वर्यवान्।

(९) स्वः=(स्वर्, सुवर्, सुवर्ग)=प्रकाश, तेजस्वी, आनंदमय।

इन शब्दोंके द्वारा परमेश्वरका स्वरूप वर्णन किया है। पहिले मंत्रमें कहा है कि, "जो दुष्टताका नाश करनेवाला, शुद्ध और पूज्य है उसको नमस्कार है। ईश्वरका दण्ड हम सबको छोडकर दूसरोंपर चले। परमेश्वर हमारा कल्याण करे।" इस मंत्रमें ईश्वरका दण्ड हमारे ऊपर न चले परंतु दूसरोंपर चले, ऐसा कहा है। मंत्रमें "अस्मत्, अन्य" ऐसे दो शब्द हैं। "अस्-मत्" (अस्ति-मत्) शब्द आस्तिक अर्थात् परमेश्वरभक्तोंका बोध करनेके लिये है। धार्मिक सदाचारी ईश्वरवादी सज्जनोंका बोध यह शब्द करता है। इनहींको "आर्य" कहते हैं। इनको छोडकर जो "अन्य" अर्थात् अनार्य होते हैं, अर्थात् जो अधार्मिक, दुराचारी और नास्तिक होते हैं, उनका बोध यहां का "अन्य" शब्द कर रहा है। इनही को "दस्यु" वेदोंमें कहा है।

आर्य और दस्यु कोई नियत जातियां नहीं हैं। सदाचारी सज्जनोंको आर्य और दुराचारी दुष्टोंको दस्यु कहते हैं। प्रत्येक समाजमें ये दो प्रकारके मनुष्य रहतेहि हैं। इनहींका दूसरा नाम देव और राक्षस आदि है जिनका बोध निम्न कोष्टकसे होगाः—

(अस्मत्, अस्मदीय, अस्मिमत्, आस्मिक) (॥ अन्य, पर, भ्रातृव्य, सपत्न)

आर्य	दस्यु
Honourable, Noble	Impious
देव	राक्षस
Brilliant, learned	Evil-minded
सुर	अ-सुर
Divine, sage	Evil-genius
अमर	मर
Immortal	Decaying
विबुध, बुध	अप्रबुद्ध, अ-बुध
Awakened, clever	In-attentive
सुमनस	दुर्मनस्क
Benevolent	Melancholy
आदित्य	दैत्य
Belonging to (अदिति) Freedom	Coming from (दिति) Bondage
अस्वप्न	स्वप्नशील
Watchful	Sleepy

इन शब्दोंको देखनेसे आर्य और दस्युओंका ठीक विचार हो सकता है । दस्युके और निम्न लिखित लक्षण हैं:—

दस्यु—(अ-श्रद्ध) श्रद्धा न धरनेवाला, (अ-यज्ञ) यज्ञ न करनेवाला, (अ-यज्यु) भक्तिहीन, (अ-पृणत्) असंतुष्ट, (अ-व्रत) नियमोंके विरुद्ध चलनेवाला, (अन्य-व्रत) हीन कर्म करनेवाला, (अ-कर्मन्) आलसी, (वि-कर्मन्) विरोधके कर्म करनेवाला, (अधर) नीच वृत्तिवाला, (अ—मनुष) मनुष्यताहीन (inhuman) कर्म करनेवाला । इस प्रकारका दस्यु होता है ।

॥ भ्रातृव्य और सपत्न शब्दोंका विशेष वर्णन अथर्ववेदके स्वाध्यायमें देखीए ।

आर्य—श्रद्धासे कर्म करनेवाला, यज्ञ करनेवाला, भक्तिमान्, संतुष्ट, नियमानुकूल चलनेवाला, उच्च कर्म करनेवाला, उद्यमशील, मिलाफके कर्म करनेवाला, उच्च मनोवृत्तिवाला, मनुष्यत्वके लिये अत्यंत योग्य कर्म करनेवाला जो होता है, उसको आर्य कहते हैं।

इन लक्षणोंको देखनेसे पता लगेगा कि, आर्य और दस्यु कोई जातियां नहीं हैं, परंतु मनके संस्कारोंसे उत्पन्न होनेवाले दो प्रकारके मनुष्यहि हैं। अस्तु। इस मंत्रमें "अस्मत् और अन्य" शब्दोंसे जो अर्थ विवक्षित है उसका निश्चय इस विवरणको देखनेसे होगा।

अगले २१ वे मंत्रका भाव यह है कि, "तेजस्वी, शब्दकर्ता, ऐश्वर्यवान् और स्वकीय आनंदसे आनंदित रहनेवाले ईश्वरको हमारा नमस्कार है।" उस एक अद्वितीय परमात्माकी पूजा यहां विवक्षित है। किसी दूसरेकी पूजा नहीं करनी, परंतु केवल उसी जगन्नियन्ता प्रभूकी हि पूजा करनी है।

अब २२ वां मंत्र देखीए:—

मंत्र २२

(१४) अभय-प्रदान

"हे ईश्वर! जहां तूं है वहांसे हम सबको अभय प्रदान करो। हमारी प्रजाका, हमारे पशुओंका और हम सबका कल्याण करो।"

परमेश्वर सर्वत्र है इसलिये सब स्थानोंसे हम सबको अभय प्राप्त हो। किसी स्थानसे हमें भय न हो। हम सब निर्भय होकर धर्मका कार्य करते रहें। धर्मका अनुष्ठान यथास्थित होनेके लिये निर्भयताकी अत्यंत आवश्यकता है। विना निर्भयताके कोईभी धर्मका मार्ग आक्रमण नहीं कर सकता। धर्मके अंदर भयभीत मनुष्य कार्य नहीं कर सकता।

स्वस्ति, शांति और निर्भयता इन तीन गुणोंसे धर्मका क्षेत्र पालन किया जाता है। स्वस्तिसे आरोग्य, शांतिसे समाधान और निर्भयतासे सतत उद्योग सिद्ध होता है। जबतक व्याधियां, चंचल मनोवृत्ति और भय रहेगा तबतक धर्ममार्गपर चलना असंभव है। इसलिये स्वस्थ शरीर, शांत चित्त और निर्भय मन होनेकी आवश्यकता है। अधर्मसे चलनेके कारण जो सुखका बडा आभास प्राप्त होनेकी संभावना उत्पन्न होती है, उससे मनको रोकना बडा कठिन है। धैर्यशाली निडर मनुष्यहि इसको रोक सकता है। इसलिये निर्भयताकी बडी आवश्यकता है। निर्भयता भी धर्मविश्वासका एक फल है।

अभयके विषयमें निम्न वाक्य देखने योग्य हैः—

अभयं वो अभयं नोऽस्तु ॥

—ऐ. ब्रा. ७।१२।८॥ आ.श्रौ.२।५।१९

शां. श्रौ. २।१४।१॥

"आपके लिये अभय और हम सबके लिये अभय हो।" अर्थात् आप और हम सब निर्भय होकर धर्माचरण करें। औरः—

अभयं द्यावा-पृथिवी इहास्तु नोऽभयं सोमः
सविता नः कृणोतु ॥ अभयं नोऽस्तूर्वन्तरिक्षं
सप्त ऋषीणां च हविषाऽभयं नो अस्तु ॥

अथर्व. ६।४०।१॥

"द्यावा पृथिवीसे यहां हम सबको अभय हो, सोम और सविता हम सबके लिये अभय करे। महान् अंतरिक्ष हम सबको अभय देवे और सप्त ऋषियोंके हविसे हम सबको अभय प्राप्त हो।" द्यावापृथिव्यादि पदार्थोंसे सृष्टिके अंदर तथा शरीरके अंदर जो भाव विवक्षित हैं उनका ज्ञान निम्न कोष्टकसे होगाः—

वैदिक संकेत	बाह्यपदार्थ	आंतरिक पदार्थ.
(१) द्यौः (द्युलोक)......	प्रकाश	मस्तिष्क और विचार-शक्ति
(२) पृथिवी (भूलोक)......	स्थूलभूत.........	स्थूल शरीर और इन्द्रियां
(३) सोम (चंद्रलोक)...	चंद्र और वनस्पति...	मन और अन्न
(४) सविता (सूर्यलोक)...	सूर्य (प्रसविता)...	तेजस्विता और जनन-शक्ति
(५) अंतरिक्षं (भुवर्लोक)...	मध्यलोक...........	अंतःकरणचतुष्टय
(६) सप्त ऋषयः.........	*सप्ततत्व......	२ आंख, २ कान, २ नाक १ जिव्हायुक्त मुख अथवा सप्त धातु

इनसे अंदरका और बाहरका अभय हो अर्थात् किसी प्रकार भी भय उत्पन्न न हो। तथाः—

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ॥ अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरा-दधरादभयं नो अस्तु ॥ ५ ॥ अभयं मित्रा-दभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं + परोक्षात् ॥ अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥ ६ ॥

अथर्व. १९।१५॥

* "ये त्रि-सप्ताः" इस अथर्ववेदके प्रथम मंत्रमें "सात मूल तत्व तीन गुणोंसे युक्त बनकर विश्वके नाना पदार्थोंको बनाते हैं।" ऐसा कहा है । उस बातका यहां विचार करना उचित है ।

+ "अभयं पुरो यः।" ऐसाभी पाठ है ।

"हम सबके लिये अंतरिक्ष और द्यावा-पृथिवी अभय प्रदान करे। पीछेसे, आगेसे, ऊपरसे और नीचेसे हम सबके लिये अभय होवे ॥ ५ ॥ मित्रसे, (अमित्रात्) शत्रुसे, ज्ञात पदार्थसे और अज्ञात पदार्थसे हम सबके लिये अभय होवे। रात्रीके समय और दिनके समय हम सब निर्भय होकर रहें। और सब दिशामें रहनेवाले हमारे मित्र बनकर रहें।" तथाः-

अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः ॥

—बौधाय. ध. शा.२।१०।१७।२९॥

"मेरेसे सब भूतोंके लिये अभय है।" अर्थात् मैं किसीको आजसे कष्ट नहीं दूंगा। यह सबको अभय करनेका प्रारंभ है। सब अच्छे कार्योंका प्रारंभ अपने पाससेहि होना चाहिए। दूसरेको प्रेरणा करनेकी अपेक्षा उत्तम कर्म स्वयं करना आसान और अच्छा है।

अस्तु। इस प्रकार २२ वे मंत्रका विचार हुआ; अब २३ वां मंत्र देखेंगेः—

मंत्र २३

(१५) जनताका द्वेष करनेवालेका नाश।

"जल और वनस्पतियां हम सबको लाभदायक हों। परंतु जो अकेला दुष्ट हम सबका द्वेष करता है और हम सब जिस एकका द्वेष करते हैं, उनको जल और वनस्पतियां हानिकारक हों।"

इस मंत्रमें एक बडे समाज नियमका उपदेश किया है। अल्पपक्ष और बहुपक्षका परस्पर बर्ताव कैसा होना चाहिए इस विषयका विचार इस मंत्रने किया है। एकको उचित नहीं कि वह सबका द्वेष करे। जो एक सब दूसरोंका द्वेष करता है, और जिस एकको सब दूसरे बुरा कहते हैं वह दण्डनीय होता है।

इस मंत्रमें "हम" (अस-मत्) शब्द आस्तिक, धर्मात्मा, सदाचारीयोंके लिये आया है, और "यः" (जो) शब्द अधार्मिक, दुष्ट फिसादी दस्युके लिये आया है। अर्थात् उक्त मंत्रका भाव यह हुआ कि, "एक दुष्ट मनुष्य हम सब धार्मिकोंका द्वेष करता है इसलिये हम सब धार्मिक पुरुष उस एक दुष्टका द्वेष करते हैं। इसलिये उसका अहित होवे।"

मंत्रमें "(१) यो अस्मान् द्वेष्टि।" (जो हम सबका द्वेप करता है) यह वाक्य दूसरे "(२) यं वयं द्विष्मः।" (जिसका हम सब द्वेष करते हैं) इस वाक्यका कारण है। अर्थात् हम सब उस दुष्टका इसलिये द्वेष करते हैं कि वह प्रथम हम सबका द्वेप करता है। यदि वह सबका द्वेष न करता, तो हममेंसे कोईभी उसका द्वेप न करते। वह एक आदमी झगडा डालता है, इसलिये हम सबको आवश्यक होता है कि, उसको अलग करें।

एक को अपनी उन्नति सबकी उन्नतिमें समझनी चाहिए। सबकी अवनतिके साथ एकको अपनी अवनति समझनी चाहिए। समाजको बिघाडकर, समाजका अहित करके, सब जातीको कष्ट देकर किसी एकको अपना ही लाभ करनेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिए।

अल्प संख्यावाले पक्षको उचित नहीं कि, वह सब राष्ट्रका अहित करके अपने लाभ का साधन करें। और बहुसंख्यावाले पक्षकोभी उचित नहीं कि वह अपने संख्याके जोर से अल्पसंख्यावालोंको दबालें।

"जल और ओषधियां हम सबको लाभदायक हों।" इस पहिले कथन में सबको लाभ होनेकी हि प्रार्थना है। परंतु यदि कोई ऐसा दुष्ट मनुष्य समाजमें उत्पन्न हुआ कि, जिसके कारण सब समाजको कष्ट होनेकी संभावना हो, तो उसका निवारण सबको मिलकर करना चाहिए। अस्तु। इसप्रकार इस मंत्रपर विचार करना चाहिए। इस मंत्रके साथ निम्न मंत्र देखने योग्य हैं:—

> इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य याच्छ्रेष्ठाभि-
> र्मघवञ्छूर जिन्व॥ यो नो द्वेष्ट्यधरः
> सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु॥
>
> —ऋ. ३।५३।२१॥

"हे इन्द्र ! आज बहुत (ऊतिभिः) रक्षणोंके साथ (नः) हम सबके पास आओ । और श्रेष्ठताओंके साथ, हे शूर (मघ-वन्) ऐश्वर्य-वान्, हम सबको (जिन्व) आगे बढाओ । जो हमारा (द्वेष्टि) द्वेष करता है उसको (अधरः) नीचे (सस्पदीष्ट) दबाओ और (यं उ) जिसका हम सब द्वेष करते हैं उसको प्राण छोड दे अर्थात् वह मरजावे ।" तथाः—

> अजैष्माद्यासनाम चाभूमाऽनागसो
> वयम् ॥ जाग्रत्स्वप्नः संकल्पः पापो
> यं द्विष्मस्तं स ऋच्छतु । यो नो द्वेष्टि
> तमृच्छतु ॥ ऋ. १०।१६४।५॥

"आज हम सब (अजैष्म) विजय करें और प्रबल होवें । तथा (अन्-आगसः) निष्पाप और निष्कलंक होवें । (पापः संकल्पः) पाप-मय विचार जो जागृत अवस्थामें और (स्वप्नः) निद्राकी अवस्थामें उत्पन्न होता है, वह (तं ऋच्छतु) उसके पास जावे की (यं द्विष्मः) जिसका हम सब द्वेष करते हैं । जो हम सबका द्वेष करता है उसकेपास वह पापका विचार चला जावे ।" हमारे पास कोई पापी विचार न रहे ।

इन मंत्रोंको इस २३ वे मंत्रके साथ विचारना चाहिए । अब अगला मंत्र देखीएः—

मंत्र २४

(१६) ज्ञानदृष्टिका उदय और दीर्घ आयुष्यकी प्राप्ति ।

(१) "वह ज्ञानियोंका हित करनेवाली शुद्ध दिव्यदृष्टि पहिलेसेहि उदयको प्राप्त हुई है ।"

ज्ञानदृष्टिके उदयसेहि सब कुछ उन्नति होती है । दिव्यदृष्टि, ज्ञानदृष्टि, ज्ञाननेत्र ये सब एक अर्थवाले शब्द हैं । ज्ञानियोंका श्रेष्ठत्व इसी ज्ञान-नेत्रके खुलनेसे होता है । इस दिव्यदृष्टिका परमेश्वर—शक्ति और परमे-

श्वर-कृपाके साथ घनिष्ठ संबंध है। सब दिव्य तेजका उदय उसीसे होता है। इसलिये कहा है कि दिव्यज्ञान पहिलेसेहि उदय हुआ है।

सूर्यका उदय होनेपरभी लोकोंको जल्दी उठकर अपने कार्य करने चाहिए। इसीप्रकार ज्ञानचक्षूका उदय होनेपरभी उससे सहायता लेनी मनुष्योंके पुरुपार्थपर निर्भर है। यदि मनुष्य पुरुपार्थहीन होंगे, तो ज्ञानचक्षूके उदय होनेसे कोई लाभ नहीं होगा। इसलिये कहा है कि यह दिव्यचक्षु ज्ञानियोंका-देवोंका-हित करनेवाला है। अन्योंका हित उस दिव्यचक्षुसेभी नहीं होता।

देव उसको कहते हैं कि जो विजयशील, विजिगीपु, व्यवहारदक्ष, तेजस्वी, आनंदित, पुरुपार्थी, परोपकारी, और विद्वान् होते हैं। ऐसे पुरुपोंका हित दिव्यचक्षु द्वारा होता है। यह भाव "देव-हितं चक्षुः।" का है। यह आशय ध्यानमें धरकर, उक्त दिव्यगुणोंका धारण करके, ईश्वरीय दिव्यज्ञानदृष्टिसे अपनी उन्नतिका साधन करना हरएकको उचित है।

"सौं वर्षपर्यंत देखें, जीते रहें, सुनते रहें, प्रवचन करते रहें, अदीन होकर रहें, इतनाही नहीं परंतु सौं वर्षोंसे अधिक जीते रहें," और अदीन रहकर पुरुपार्थ करते रहें। यह भाव इस मंत्रके उत्तरार्धका है।

"सौं वर्ष देखते रहें" इसका अर्थ-आंखकी दर्शनशक्ति सौं वर्षतक बराबर ठीक कार्य करनेके लिये योग्य रहे। ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि जिससे अल्प आयुमें नेत्रोंकी शक्ति क्षीण न हो।

"सौं वर्ष जीते रहें" इसका तात्पर्य इतना है कि हम अपमृत्युसे न मरें। सौं वर्ष होनेके पश्चात् स्वाभाविक मृत्युसे मरण हो। ब्रह्मचर्यादि धार्मिक नियमोंका यथायोग्य पालन तथा आहार, विहार, व्यायाम आदिका यथायोग्य सेवन करनेसे दीर्घ आयु हो सकती है।

"सौं वर्ष सुनते रहें"-कानकी श्रवणशक्ति सौं वर्षतक उत्तम अवस्थामें रहे। देखना और सुनना इन दो शक्तियोंका मंत्रमें उल्लेख है। अन्य इंद्रियोंकी अन्य शक्तियां भी सौं वर्षपर्यंत अच्छी अवस्थामें रहें यह

आशय यहां है। पांवमें चलनेकी शक्ति, हाथोंमें कार्य करनेकी शक्ति, पेटकी पचनशक्ति, मनकी मननशक्ति, हृदयकी भक्ति आदि सब सौं वर्षपर्यंत उत्तम अवस्थामें रहें। किसी शक्तिका नाश थोडी आयुमें न हो, यह तात्पर्य यहां समझना चाहिए।

"सौं वर्षतक प्रवचन, भाषण करते रहें।" अर्थात् हमारी वक्तृत्व-शक्ति हमारे पास सौं वर्षपर्यंत उत्तम अवस्थामें रहे।

"सौं वर्षतक अदीन होकर रहें." इंद्रियोंकी शक्ति क्षीण होनेसे शारीरिक दीनता उत्पन्न होती है। और सामाजिक और जातीय अवस्था बिघडनेसे सामाजिक बंधनके कारण पारतंत्र्य होता है, जिससे मनुष्य दीन और हीन होता है। इसमेंसे किसी प्रकारकीभी हीनता हमारे पास न आवे। हम सदा बलवान्, उत्साही, पुरुषार्थी और आनंदवृत्ति युक्त रहते हुए अपना कर्तव्यपालन सदा करते रहें।

"सौं वर्षसेभी अधिक" जीते रहकर आमरणान्त पुरुषार्थ करते रहें। यहां कोई यह न समझे की मनुष्यकी आयु केवल सौं वर्षकीहि है। सौंसे अधिक वर्षतक मनुष्य जिंदा रह सकता है। मनुष्योंका व्यक्तिशः और संघशः प्रयत्न आयुष्यवृद्धिके लिये होना चाहिए।

इस मंत्रमें कहीं हुई बातें पुरुषार्थसे होनेवालीं है। यदि मनुष्य धर्म-नियमोंके अनुकूल पुरुषार्थ करेंगे तो इनकी प्राप्ति हो सकेगी। धर्मके नियम इसीलिये हैं। ये बातें सबको प्राप्त हो सकतीं हैं, ऐसा समझकर सब लोकोंको इनकी प्राप्तीके लिये अहर्निश पुरुषार्थ करना चाहिए। क्यौं कि पुरुषार्थसेहि सबकी प्राप्ति हो सकती है।

इसलिये सबको उचित है कि, बालपनसेहि अपने इंद्रियोंको बलवान् बनाकर, उनसे अत्याचार न करता हुआ, धार्मिक जीवन व्यतीत करके, वृद्ध अवस्थातक अपनी सब शक्तियां ठीक रखनेका यत्न करे। यत्न करनेसे सबकुछ साध्य होता है। केवल बातें करनेसे सिद्धि नहीं होती। अब अंतमें वैदिक प्रार्थना करके इस अध्यायकी समाप्ति करनी है:—

मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय
आयुः प्रतरं दधानाः ॥ आप्यायमानाः
प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत
यज्ञियासः ॥

ऋ. १०।१८।२॥

तै. आ. ६।१०।२॥ मा. गृ. २।१।१७

"(मृत्योः पदं) मृत्युके पांव को (योपयन्तः) परे ढकेलते हुए (यदा) जब आप (द्राघीय आयुः) दीर्घ आयुष्यको (प्रतरं) अधिक लंबा बनाकर (दधानाः) धारण करते हुए (एत) चलेंगे अर्थात् अपना पुरुषार्थ करेंगे तब (आप्यायमानाः) अभ्युदयको प्राप्त होते हुए (प्रजया धनेन) प्रजा और धनसे युक्त होकर, और (यज्ञियासः) पूजनीय बनकर (शुद्धाः पूताः) शुद्ध और पवित्र (भवत) बनेंगे।" इसी-मंत्रके सदृश अथर्ववेदका मंत्रभी देखने योग्य है:—

कस्ये मृजाना अति यन्ति रिप्रमायुर्दधानाः
प्रतरं नवीयः ॥ आप्यायमानाः प्रजया
धनेनाध स्याम सुरभयो गृहेषु ॥

अथर्व. १८।३।१७॥

"(❀ क-स्ये) आत्माके छाननीमें (मृजानाः) शुद्ध बनकर (रिप्रं) अशुद्धि, मल अथवा अपमृत्युको (अति यंति) धोकर परे जाते हैं। और (नवीयः प्रतरं आयुः) नया दीर्घ आयुष्यको (दधानाः) धारण करते हैं। (अध-अथ) पश्चात् हम सब (प्रजया धनेन) प्रजा और धनके साथ (आप्यायमानाः) अभ्युदयको प्राप्त होते हुए, (गृहेषु) अपने घरोंमें (सुरभयः) सुगंधिरूप बनकर (स्याम) रहें।"

आत्माकी छाननीमें अपने आपको छानकर पवित्र बनाना है। क्यों कि अपने दोषोंका अपने आपकोहि पता होता है, इसलिये अपना सुधार

❀ "**कस्ये** (क–स्ये)="**क**" का अर्थ आत्मा। और "**स्य**" का अर्थ छाननी अथवा छज है।

अपने आपकोहि करना चाहिए। यदि मनुष्य अपनी शुद्धि स्वयं न करेगा तो कोई दूसरा नहीं कर सकता।

मलोंको अर्थात् दुष्टताको दूर करनाही व्यक्तिका और समाज का सुधार है। मकानोंमें अथवा जातीमें सुगंधरूप बनकर रहना चाहिए। सुगंधके पास सब आते हैं, दुर्गंध के पास कोई नहीं जाता। अपने घरमें, जातीमें और अपने राष्ट्रमें सुगंधरूप होकर रहना चाहिए, अर्थात् सबको आकर्षित करके सबको उन्नत करना चाहिए। और इस पवित्र कार्य करनेके लिये अपना आयुष्य बहुत बढाना चाहिए।

अस्तु। इस अध्यायका प्रत्येक मंत्र अद्भुत अर्थोंका प्रकाश कर रहा है। पाठक एक एक मंत्रका अच्छा विचार करके, वेदके गुह्य आशयको समझ कर, उस ज्ञानसे अपना आचरण सुधार कर, अपनी और समाजकी उन्नतिका साधन करनेमें तत्पर हों।

ॐ शांतिः॥ शांतिः॥ शांतिः॥

इस पुस्तकमें आये हुए वैदिक सुभाषित।

मूल मंत्रोंके सुभाषित।

१ इन्द्रो विश्वस्य राजति।......एक ईश्वर विश्वका राजा है। (मंत्र ८)

२ दृंह मा। ....मुझे बलवान् करो। (मं. १८)

३ मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे। — हम सब परस्पर मित्रकी दृष्टिसे देखते हैं। (मं.१८)

४ मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।......... — मैं मित्रकी दृष्टिसे सब भूतोंकी ओर देखता हूं। (मं. १८)

५ मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्...... — मुझे मित्रकी दृष्टिसे सब प्राणी देखें। (मं. १८)

६ ज्योक् ते संदृशि जीव्यासम्। तेरे साक्षात्कारमें दीर्घ आयुतक जीता रहूं (मं. १९)

७ नो अभयं कुरु।............हम सबको निर्भय करो। (मं. २२)

८ तच्चक्षुर्देव-हितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।...... — वह ज्ञानियोंका हित करनेवाला दिव्य शुद्ध प्रकाश पहिलेसेहि उदय हुआ है। (मं. २४)

स्पष्टीकरण में आये हुए मंत्रोंके सुभाषित।

९ भद्रं वद गृहेषु च।.........घरोंमें शुभ विचार बोलो। (मं. १)

१० भद्रं वद पुत्रैः।............लडकोंके साथ उत्तम भाषण करो।

११ वाचं वदत भद्रया।.........उत्तम वाणीसे बातचीत करो।

१२ यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति।.................. — जो तत्वको नहीं जानता वह मंत्रसे क्या करेगा?।

यजुर्वेद० स्वा० ६

१३ वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः । …………	बुद्धिमान् कवी वाणीकी पवित्रता करते हैं ।
१४ विश्वेदेवाः समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वियंति साधु । ………	एक उद्देशसे प्रेरित हुए हुए एक मत-वाले सब ज्ञानी एक कर्तव्यकोहि उत्तम रीतीसे कर सकते हैं ।

१५ भद्रं नो अपि वातय मनः। …कल्याणकारक मन हम सबको दो ।

१६ मनो दानाय चोदयन् ।……मन दानकेलिये प्रेरित करो ।

१७ अनर्शरातिं वसुदामुप-स्तुहि ।………………	जो हानिकारक दान नहीं करता, उस धन-दाताकी स्तुति करो ।
१८ सो अस्य कामं विधतो न रोषति ।………………	उसकी इच्छानुसार कर्तव्यपालन करनेवालेपर (वह प्रभु) क्रोध नहीं करता ।
१९ सुषारथिरश्वानिव यन्मनु-ष्यान् नेनीयतेऽभीशुभि-र्वाजिन इव ।…………	जिस प्रकार उत्तम सारथी अपने घोडोंको लगामोंके साथ स्वाधीन रख-ता है, उस प्रकार उत्तम मन मनुष्योंके इंद्रियोंको स्वाधीन रखता है ।
२० तन्मे मनः शिवसंकल्प-मस्तु ।………………	वह मेरा मन कल्याणमय विचारोंसे युक्त होवे ।

२१ मनो यज्ञेन कल्पताम् ।……मनको सत्कर्ममें लगाओ ।

२२ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्।……प्राणके आधारपर सब रहता है ।

२३ प्राणो यज्ञेन कल्पताम्।……प्राणको सत्कर्ममें लगाओ ।

२४ संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।……	संघ बनाओ, उत्तम भाषण करो, और मनोंको सुसंस्कृत करो ।

२५ वाग्यज्ञेन कल्पताम् ।……वाणीको सत्कर्ममें अर्पण करो ।

२६ सरस्वती मन्युमंतं जगाम । विद्या पुरुषार्थीके पास जाती है। (मं.२)

२७ उत्तिष्ठत । अवपश्यत ।…उठो और चारों ओर देखो ।

२८ उत्तिष्ठत प्रतरत सखायः।…भाईयो ! उठो और जोरसे तेरो ।

२९ शिवान् वयमुत्तरेमाऽभि वाजान् ।............... पार होने पर हि शुभ शक्तियां प्राप्त होंगीं ।

३० अश्मन्वतीरीयते, संरभध्वम् ।.................... पत्थरोंवाली नदी जोरसे चल रही है, इस लिये परस्परोंको सख्त पकडो ।

३१ संरभध्वं, वीरयध्वम् ।......एक बनो और शौर्य करो ।

३२ अत्रा जहीत ये असन् दुरेवाः ।.............. जो बुराइयां हैं उनको यहां ही छोडो।

३३ अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः।.................. जो सेवन करने अयोग्य हैं उनको यहां ही छोडते हैं ।

३४ अत्रा जहीत ये असन्नशिवाः।.................. यहां ही उनको छोडो जो अमंगल हैं ।

३५ त्वे इन्द्राप्यभूम ।............हे ईश्वर ! हम सब तेरे बनकर रहें ।

३६ धियं वनेम ऋतया सपन्तः ।.................. हम सब सदाचरणके साथ बुद्धिको प्राप्त हों ।

३७ सेदु राजा क्षयति चर्षणीनाम् ।.............. सब मनुष्योंका वही एक राजा है । (मं ८)

३८ इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा।.................. स्थावर जंगमका एकहि प्रभू है ।

३९ त्वं राजा जनुषाम् ।......तूं प्रजाओंका एक राजा है ।

४० इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनाम् ।.................. स्थावर जंगमका एकहि राजा है ।

४१ आपश्च विश्वभेषजीः ।......जलमें सब दवाईयां हैं ।

४२ अग्निं च विश्वशंभुवम् ।...अग्निसे सब कल्याण होता है ।

४३ परमेण धाम्ना दृंहस्व ।......श्रेष्ठ तेजके साथ हमको बढाओ ।

४४ उत्तिष्ठत । संनह्यध्वम् ।...उठो अपनी तैयारी करो ।

४५ मित्रस्य यायां पथा ।......मित्रके मार्गसे चलें ।

४६ दुरिता तुर्याम मर्त्यानाम्।...मनुष्योंके बुराईयोंको त्वरासे दूर करेंगे

४७ ईशा वास्यमिदं सर्वम् । ..इस सब जगत्में ईश्वर व्याप्त है।

४८ तेन त्यक्तेन भुंजीथाः।......उसके दिये हुएका हि भोग करो।

४९ मा गृधः ।..................लालच न करो।

५० कस्य स्वित् धनम् ?.........भला ! धन किसका है ?

५१ श्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व। { हे धनवान् शूरो ! सबको श्रेष्ठ भावनाओंसे प्रेरणा करो।

५२ अजैष्माऽद्या सनाम ।......आजहि प्रबल होकर विजय करेंगे।

५३ अभूम अनागसो वयम्।...हम सब निष्कलंक बनें।

५४ मृत्योः पदं योपयन्तः।...मृत्युके पांवको परे ढकेलो।

५५ आप्यायमानाः प्रजया धनेन।.................. { प्रजा और धनके साथ बढो।

५६ शुद्धाः पूता भवत ।......शुद्ध और पवित्र बनो।

५७ क-स्ये मृजाना अतियंति रिप्रम् ।.................. { आत्माकी छाननीसे शुद्ध बननेवाले आपत्तिसे पार होते हैं।

५८ अध स्याम सुरभयो गृहेषु।...अब घरोंमें सुगंधरूप बनकर रहेंगे।

इस पुस्तक में आये हुए
मंत्रोंकी सूची

यजुर्वेद अध्याय ३६ के मंत्रोंके अन्य स्थानोंके पते।

मंत्र १—ऋचं वाचं प्रपद्ये० ॥ यजु. वा. सं. अ. ३६।१॥

मंत्र २—यन्मे च्छिद्रं चक्षुषो० ॥ यजु. वा. सं. अ. ३६।२॥

मंत्र ३—तत्सवितुर्वरेण्यम्० ॥ ऋग्वे. ३।६२।१०॥ साम० २।८१२॥— यजु. वा. सं. ३।३५॥; २२।९॥; ३०।२॥; ३६।३॥ तैत्तिरीय. सं. १।५।६।४॥—८।४॥;४।१।११।१॥ मैत्रायणी सं. ४।१०।३॥—१४९।१४॥ ऐतरेय ब्रा. ४।३२।२॥; ५।५।६॥—१३।८॥—१९।८॥ कौशीतकी ब्रा. २३।३॥; २६।१०॥ गोपथ ब्रा. १।१।३४॥ दैवत ब्रा. ३।२५॥ माध्यं. शतप. ब्रा. २।३।४।३९॥;१३।६।२।९॥;१४।९।३।११॥ तैत्ति० आर० १।११।२॥;१०।२७।१॥ आंध्र तैत्ति. आ० १०।३५। बृह. आ० उप० ६।३।११॥ म० नारा. उप. १५।२॥ मैत्री उ० ६।७।३४॥ जैमि. उप. ब्रा० ४।२८।१॥ श्वेता० उ. ४।१८॥ आश्व. श्रौ. सू. ७।६।६॥;८।१।१८॥शांखा.श्रौ.सू.२।१०।२॥—१२।७॥;५।५।२॥; १०।६।१७॥—९।१६॥ आपस्तं श्रौ० सू. ६।१८।१॥शांखा.गृ.सू. २।५।१२॥—७।१९॥; ६।४।८॥ कौशि. सू. ९१।६॥ साम मंत्र ब्रा.।१।६।२९॥(खादिर गृ०सू.२।४।२१॥)आप.मं.पा. २।४।१३॥ (आप० गृ० सू. ४।१०।९–१२॥) बौधा० ध. शा. २।१०।१७।१४॥

प्रतीक—तत्सवितुः॥ आप. श्रौ. सू. २०।२४।६॥ मान. श्रौ. सू. ५।२।४।४३॥आप.गृ.सू.४।११।९॥ मान. गृ. १।२।३॥;४।४।८— ५।२ ॥ तत् ॥ मान. ध० शा. २।७७॥ ऋग्विधा० १।१२।५॥

मंत्र ४—कया नश्चित्र आ भुवद्. ॥ ऋग्वे. मंडल ४।३१।१॥ अथर्व. २०।१२४।१॥ साम० १।१६९॥;२।३२॥, यजु० वा. सं.

२७।३९॥;३६।४॥ तैत्ति० सं. ४।२।११।२ = ४।१२।५॥ मैत्रा०सं. २।१३।९॥ = १५९।४॥; ४।९।२७॥ = १३९।११॥ काठक सं. २१।१३॥; ३९।१२॥ कौ० ब्रा. २७।२॥ गोप० ब्रा. २।४।१॥ पंचविंश ब्रा. ११।४।२॥; १५।१०।१॥ दैव. ब्रा. १।१४॥ ऐ. आ. प्र. ५॥ तै० आ० ४।४२।३॥ आश्व. श्रौ. २।१७।१५॥; ५।१६।१॥; ७।४।२॥; ८।१२।१८॥ = १४।१८॥ वैतान सू० ४२।९॥ लाट्या. श्रौ. सू. ५।२।१२॥ आप. श्रौ. सू. १२।८।५॥ १७।७।८॥ मान. श्रौ० ६।२।३।—७।१।१॥ मान. गृ. १।५।५॥ प्रतीक–कया नश्चित्र०॥ शांखा०श्रौ०७।२२।२॥शां.गृ.१।१६।६॥ कया न.॥ मैत्रा. सं. ३।१६।४॥ = १९०।३॥;४।१०।४॥ = १५३।५॥ काठ. सं. अश्व. ५।२१॥ कया० । ऋग्विधान. २।१३।४॥

मंत्र५—कस्त्वा सत्यो मदानां०॥ऋग्वे.मं.४।३१।२॥अथर्व०२०।१२४।२॥ साम. २।३३॥ यजु० वा. सं. २७।४०॥,३६।५॥ मैत्रा० सं. २।१३।९ = १५९।६॥; ४।९।२७॥ = १३९।१३॥ काठक सं. ३९।१३॥ तैत्ति० आ० ।४।४२।३॥ आप. श्रौ० १७।७।८॥

मंत्र ६—अभी षु णः सखीनां० । ऋग्वे. मं. ४।३१।३॥ अथर्व० २० १२४।३॥ साम० २।३४॥ यजु० वा० सं० २७।४१॥;३६।६॥ मैत्रा०सं.२।१३।९॥ = १५९।८॥;४।९।२७॥ = १३९।१५॥काठक सं. ३९।१२॥ तैत्ति० आ० ४।४२।३॥ आप. श्रौ० १७।७।८॥

मंत्र ७—कया त्वं न ऊत्याऽभि० ॥ ऋग्वे०८।९३।१९॥साम०२।९३६॥ यजु. वा. सं. ३६।७॥ कौशी. ब्रा. २७।२॥ गोप. ब्रा.२।४।१॥ आश्व. श्रौ. ५।१६।१॥;७।४।२॥ शांखा. श्रौ. ७।२२।२॥

मंत्र ८—इन्द्रो विश्वस्य राजति० ॥ यजु. वा.सं.३६।८॥ साम.१।४५६॥ आश्व. श्रौ. ८।२।२१॥ साम वि. ब्रा. २।६।७॥

मंत्र ९—शं नो मित्रः शं वरुणः०॥ ऋग्वे० १।९०।९॥ अथ०१९।९।६ = ७॥ यजु. वा. सं. ३६।९॥ तैत्ति. आ. ७।१।१॥ = १२।१॥ तै. उप. १।१।१॥ = १२।१॥ मान. श्रौ. ६।१।५॥ प्रतीक–शं नो मित्रः ॥ शां. गृ. ४।१८।३॥ शं नो-मित्रिया ॥ बृह० दे० ३।७९॥

मंत्र १०—शंनो वातः पवता१शं०॥यजु.वा.सं.३६।१०॥तै.आ.४।४२।१॥

मंत्र ११—अहानि शं भवन्तु नः शं०॥ अथर्व० ७।६९।१॥ यजु. वा. सं. ३६।११॥मैत्रा.सं. ४।९।२७॥२१३८।११॥, तैत्ति. आ. ४।४२।१॥

—शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभि०॥ऋग्वे.७।३५।१॥अथर्व.१९।१०।१॥ यजु. वा. सं. ३६।११॥ आप. श्रौ. ८।१४।१८॥ शांखा० श्रौ० १६।१३।६॥ प्रतीक–शं न इन्द्राग्नी०। ऐत. आ. प्र० ३॥ शां. श्रौ. ११।९।१२॥ शां.गृ.५।१०।३॥ ऋग्विधा०२।२५।१०॥ पारस्क. ध. ११।३५॥

मंत्र १२—शं नो देवीरभिष्टय०॥ ऋग्वे०१०।९।४॥ ऋग्वे. खिल० १०।१२७।१३॥अथर्व०१।६।१॥ साम०१।३३॥ यजु.वा.सं.३६।१२॥ काठ. सं. १३।१५॥;३८।१३॥, गोप. ब्रा. १।१।२९॥तैत्ति.ब्रा.॥ १।२।१।१॥;२।५।८।५॥तै. आ० ४।४२।४॥ आप.श्रौ०५।४।१॥; १६।१४।१॥२१६।३॥ मान. श्रौ.६।१।५॥ आश्व. गृ.४।७।११॥ हिर०गृ. १।५।७॥ प्रतीक—शं नो देवी.॥शां.श्रौ. ४।११।६॥२ २।११९॥;८।९।७॥लाट्या०श्रौ० ५।३।१३॥ विष्णुस्मृ० ८६।११॥ याज्ञव. ध. शा. १।३००॥ बृह. पा. ध.२।१३५॥; ९।६१॥२ ६५॥२३०९॥ शंख. सं. ८।८॥वृद्ध हारीत. ध.८।३४॥ औशानसध. ५।३८॥ सामवि. ब्रा. २।३।१॥ कौशी. सू. ९।७॥; १४०।५॥ याज्ञ. ध. शा. १।२३०॥ वृद्ध हा. ध. ८।१८॥

मंत्र १३—स्योना पृथिवि नो भवा०॥(स्योना पृथिवि भवा०)॥ ऋग्वे. १।२२।१५॥यजु.वा.सं.३५।२१॥;३६।१३॥मैत्रा.सं.४।१२।२॥२ १८०।१६। काठ. सं. ३८।१३॥ तै. आ. १०।१।१०॥आश्व.श्रौ. ८।१४।१८॥आप.श्रौ.१६।१७।१७॥ आश्व.गृ.२।३।७॥ शांखा.गृ. १।२७।९॥;३।१।१६॥; ४।१८।५॥साम मं.ब्रा.२।२।७॥ गोभिल. गृ.३।९।१८॥पार.गृ.३।२।१३॥आप.मंत्रपा० २।१५।२२१८।८॥ (आप. गृ. ७।१७।३॥२१९।११॥) हिर० गृ० २।१७।९॥ मान.गृ. १।१०।५॥;२।७।२२३॥; १०।९।१०॥ निरुक्त. ९।३२॥

(दैव.कां.३।३।३२) प्रतीक-स्योना पृथिवी. ॥ ऐ.आ.प्र.॥ शां.श्रौ.९।२८।१३॥ मान.श्रौ० ११।७।१॥ ल. अत्रि.सं. ४।३१॥ बृह०प०ध०९।५९-१२५-३१२॥स्योना.॥कात्या.श्रौ०२।६।३१॥ खादिर गृ. ३।३।२४॥ ऋग्विधा. २।२८।५॥ बृह० दे० ३।९३॥

मंत्र १४—आपो हि ष्ठा मयो भुवः०॥ ऋग्वे.१०।९।१॥अथर्व.१।५।१॥ साम. २।११८७॥ यजु. वा. सं. ११।५०॥; ३६।१४॥ तैत्ति. सं. ४।१।५।१॥; ५।६।१।४॥; ७।४।१९।४॥ मैत्रा. सं. २।७।५॥-७९।१६॥; ३।१।६॥-८।१०॥; ४।९।२७-१३९।३॥ काठ. सं. १६।४॥;१९।५॥; ३५।३॥शत.ब्रा.६।५।१।२॥ तै. ब्रा. ३।९।७।५॥ तै.आ.४।४२।४॥; १०।१।११॥ आप.श्रौ.७।२१।६॥, ९।१२।२॥-१८।८॥; १३।१५।१३॥; १४।१८।१॥; १६।४।१॥ आश्व. गृ. २।८।१२॥-९।८॥;४।६।१४॥ कौशिकसू. ६।१७॥ हिर० गृ. १।१०।२॥-२१।५॥; २।१८।९॥ मान.गृ.१।२।११॥ आप.मं.पा.२।७।१३॥(आप.गृ.५।१२।६॥)बौधा.ध.२।५।८।११ ल०व्या.सं. २।१९॥निरु०९।२७॥ (निरु.दै.३।३।२७॥) प्रतीक-आपो हि ष्ठा. ॥ मैत्रा.सं.२।१३।१॥-१५३।३॥ काठ. सं. अश्व. ४।८॥ आश्व. श्रौ. ५।२०।६॥ शां. श्रौ. ४।११।६॥-१५।३॥; ८।६।७॥; ७।१२।२०॥; ९।२८।६॥; १४।५७।७॥ वै. सू. २८।११॥ कात्याय. श्रौ० १६।६।१६॥ मान.श्रौ०४।३।४३॥— ६।१।२॥—६।१।६॥ पार. गृ. १।८।६॥; २।२।१४-६।१३॥- १४।२१॥; ३।५।४॥ विष्णु.स्मृ. ६४।१८॥;६५।३॥ गौत.ध.शा. २६।१०॥ परा. स्मृ. ११।३४॥; १२।१०॥ल.व्यास स्मृ.१।२२॥; बृ. हारी. स्मृ. ८।२५॥ बृ. परा. सं. २।३८-५०-५६-१२९॥ ऋग्वि० १।३।५॥-४।१०॥; ३।४।३-६॥ आपोहिष्ठीय० ॥ शां.गृ. ३।१।४॥ वसि. ध. शा. १५।२०॥ बृ. हा. स्मृ. ४।३०॥ शां.श्रौ०४।११।६॥-२१५॥;८।६।७॥;७।१२।२०॥;१४।५७।७॥ लाट्या. श्रौ. २।१०।२०; ३।६।६॥; ४।११।७॥; आप. श्रौ. १५।११।१६॥ २०।१८।७॥ शां. गृ. १।१४।८॥ मान. गृ. १।१।२४॥-६।४॥-११।२६॥; २।२।२७॥ साम वि. १।२।५॥

मंत्र १५—यो वः शिवतमो रसः ॥ ऋग्वे. १०।९।२॥ अथर्व. १।५।२॥ साम.२।११८८॥ यजु. वा. सं. ११।५१॥; ३६।१५॥ तै. सं. ४।१।५।१॥; ५।६।१।४; ७।४।१९।४॥ मैत्रा. सं. २।७।५॥፦७९।१८॥; ४।९।२७፦१३९।५॥ काठ. सं. १६।४॥; ३५।३॥ तै. आ. ४।४२।४॥; १०।१।१२॥ आप. मं. पा. २।७।१४॥ (आप.गृ.५।१२।६॥)

मंत्र १६—तस्मा अरं गमाम वो० ॥ ऋग्वे० १०।९।३॥अथर्व०१।५।३॥ साम. २।११८९॥यजु. वा. सं. ११।५२॥; ३६।१६॥ तै.सं.४।१।५।१॥;५।६।१।४॥; ७।४।१९।४॥ मैत्रा० सं.२।७।५॥፦८०।१॥; ४।९।२७॥፦ १३९।७॥ काठ. सं. १६।४॥; ३५।३॥ तै. आ. ४।४२।४॥; १०।१।१२॥ आप. मं. पा. २।७।१५ आप. गृ० ५।१२।६॥)बृ. हा. स्मृ. ८।५१॥

मंत्र १७—द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳशान्ति० ॥ अथर्व.१९।९।१४॥ यजु. ३६।१७॥ काण्व. सं. ३५।५८॥ मैत्रा. सं. ४।९।२७॥፦१३८।१३॥ तै. आ. ४।४२।५॥

मंत्र १८—दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा० ॥ यजु. वा. सं. ३६।१८॥

मंत्र १९—दृते दृꣳह मा ज्योक्ते संदृशि० ॥ यजु. वा. सं.३६।१९॥

मंत्र २०—नमस्ते हरसे शोचिषे० ॥ यजु. वा. सं. १७।११॥;३६।२०॥ तै. सं. ४।६।१।३॥; ५।४।४।५॥ मैत्रा. सं. २।१०।१॥፦१३२।१॥ काठ. सं. १७।१७॥; २१।७॥ शत. ब्रा. ९।२।१।२॥ आश्व. श्रौ० २।१२।२॥ आप०श्रौ० १७।१३।५॥ मान.श्रौ.६।२।४॥ हिर० गृ० १।१८।५॥ कात्या. श्रौ.१८।३।५॥

मंत्र २१—नमस्ते अस्तु विद्युते० ॥ अथर्व० १।१३।१॥ यजु. वा. सं. ३६।२१॥कौशी. श्रौ. १३९।८॥;३८፦।८,–९॥ बृह. दे.१।५४॥; ८।४४॥

मंत्र २२–यतो यतः समीहसे ततो० ॥ यजु. वा.सं.३६।२२॥

मंत्र २३—सुमित्रिया न आप ओषधय० ॥ (सुमित्रा०)॥ यजु.वा.सं. ६।२२॥;२०।१९॥; ३५।१२॥; ३६।२३॥; ३८।२३॥; तै.सं.१।४।४५।२॥ मैत्रा. सं. १।१।१८॥,—२८।१०॥ काठ. सं.३।८॥; ३८।५॥ शत० ब्रा. ३।८।५।११॥; १२।९।२।६॥; १३।८।४।५; १४।३।१।२७॥ तै. ब्रा. १।६।६।३॥ तै. आ. ४।११।८॥ ४२।४॥; ५।९।११॥; १०।१।११॥ महा ना. उप. ४।१३॥ आश्व. श्रौ. ३।५।२॥,—६।२४॥; ६।१३।११॥ शां. श्रौ.८।१२।११॥ लाट्या. श्रौ. २।२।११॥; ५।४।६॥ बौधा. ध. २।५।८।४॥ प्रतीक ॥ सुमित्रा न आप० ॥ आप० श्रौ० ५।२७।१६॥; ८।८।१५॥; १३।२१।१॥; १५।१६।१०॥; १९।१०।५॥ कात्या. श्रौ० ३।४।२४॥; ६।१०।५॥; १९।५।१५॥; २१।४।२४॥; २६।७।३७॥ मान. श्रौ. ४।४।२२॥

मंत्र २४—तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्र० ॥ ऋग्वे० ७।६६।१६॥ यजु. वा. सं. ३६।२४॥ मैत्रा. सं. ४।९।२०॥—१३६।४॥ तै. आ. ४।४२।५॥गोभि.गृ. ३।८।५॥ आप. मं. पा. २।५।१२॥ (आप. गृ. ७।१७।७॥) हिर० गृ. १।७।१०॥ मान. गृ. १।२२।११॥ बौ.ध.२।५।८।१२॥ प्रतीक ॥ तच्चक्षु० ॥ शां. श्रौ. ३।१७।६॥; ४।१३।१॥—१५।४॥; १०।२१।११॥ शां. गृ. ३।८।७॥; ६।६।१॥ पार. गृ. १।८।७॥,—१७।६॥; २।२।१५॥ ल. हा. स्मृ. ४।५०॥ ल. व्यास. स्मृ. २।२६॥ ऋग्विधा. २।२७।५॥ बृ. दे.६।५।९॥

(६) **स्वाध्याय-मंडलका व्यय**—पुस्तक प्रकाशनमें लाभकी आशा न रखनेके कारण, स्वाध्याय-मंडलके व्यय आदिके लिये, उदार चित्त **'दानी महाशयोंकी उदारता'** पर हि विश्वास रखा है ।

स्वाध्याय-मंडलके सभासद् ।

(७) जो मनुष्य वेदका स्वाध्याय करना चाहता है, वह इस स्वा० मं० का सभासद हो सकता है । **'स्वाध्यायका निश्चय'** हि इसका चंदा है ।

(८) जो **'द्रव्यकी सहायता'** द्वारा स्वा० मंडलका पोषण कर सकते हैं, वे यथाशक्ति स्वयं सहायता करें, और दूसरोंसे करावें ।

(९) स्वा० मं० के सभासदोंको उचित है कि, (१) वे स्वा० मं० के पुस्तक स्वयं पठण करें, (२) स्वा० मं० के पुस्तकोंका प्रचार करें और (३) अधिक सभासद बनानेकेलिये यत्न करें ।

स्वाध्याय-मंडलका वार्षिक-वृत्त ।

(१०) स्वा० मं० का वार्षिक वृत्त प्रतिवर्ष प्रसिद्ध होगा जिसमें प्रतिवर्षका स्वा० मं० का कार्य, सभासदोंके नाम, दानी महाशयोंकी सहायता आदिका वृत्तांत होगा ।

सहायता का स्वीकार-पत्र ।

(११) प्रत्येक दान-प्राप्तिका स्वीकार-पत्र दानी महाशयके पास स्वा० मं० की ओर से चले जायगा । तथा वार्षिक वृत्तमें भी उसका उल्लेख रहेगा ।

उक्त नियमोंमें परिवर्तन करनेका अधिकार स्थानिक कार्यकारी मंडलको होगा । परंतु मंडलकी उन्नति के लिये सब सभासद अपनीं सूचनाएं मंडलके पास भेज सकते हैं, जिनका निःपक्षपातसे विचार करके योग्य सूचनाका अवश्य स्वीकार किया जायगा ।

औंध (जि. सातारा)
(पूना मार्ग)
ता० १५ जून १९१८

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
स्वाध्याय-मंडल.

स्वाध्याय-मंडलके पुस्तक ।

(१) यजुर्वेद अ. ४० । **ईशोपनिषद्** का स्वाध्याय । आत्मज्ञानाध्याय (प्रकाशक-म. राजपाल, सरस्वती आश्रम, 'लाहौर) मूल्य. दस आना । ॰॥=

(२) यजुर्वेद अ. ३६ । शांतिकरण अध्याय । **'सच्ची शांतिका सच्चा उपाय ।'** मूल्य आठ आना ॰॥॰

[निम्न पुस्तक छप रहे हैं]

(३) यजुर्वेद अ. ३२ । सर्व-मेध-यज्ञ । **'सर्व-पूज्यकी पूजा ।'**

(४) यजुर्वेद अ. ३१ । नर-मेध । **'मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन ।'**

[निम्न **पुस्तक गुरुकुल** कांगडी से मिलते हैं ।]

(५) **वेदमें रोग-जंतु-शास्त्र** । मू॰ देड आना । ८-॥

(६) **वेदमें वैद्य-शास्त्र** । मू॰ दो आना । ८=

(७) **वैदिक-राज्य-पद्धति** । मू॰ देड आना । ८-॥

(८) **वैदिक-सभ्यता** । मू॰ दो आना । ८=

(९) **धनका स्थान** । मू॰ एक आना । ८-

(१०) **सायण-भाष्यकी समालोचना** । मूल्य एक आना । ८-

(११) **अथर्व-वेदका स्वाध्याय** । (प्र.म. राजपाल, लाहौर) मू. १।॰

(१२) **अग्निसूक्त** । (प्र. आर्य प्रतिनिधि सभा. लाहौर) मू. ।॰

(१३) **उत्तमज्ञान** । मूल्य एक आना । ८-

[**ये सब पुस्तक बेचनेवालोंके पास मिलते हैं**]

प्रतिनिधि सभा
म. राजपाल
सरस्वतीआश्रम,
लाहौर।

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्याय-मंडल, औंध (जि. सातारा)

पूना मास ।